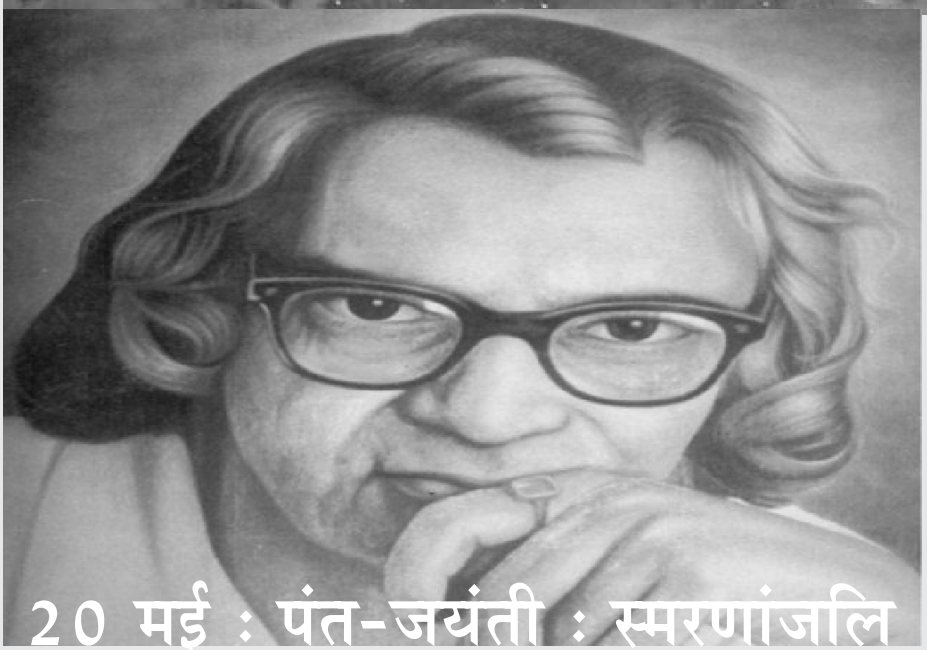
अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र

सर्वोदय जगत

वर्ष-41, अंक-19, 16-31 मई, 2018





20 मई : पंत-जयंती : स्मरणांजलि

''कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है–जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।''

-सुमित्रानंदन पंत

सर्व सेवा संघ
(अखिल भारत सर्वोदय मंडल)
द्वारा प्रकाशित

अहिंसक क्रान्ति का पाक्षिक मुख-पत्र
सर्वोदय जगत
सत्य, अहिंसा एवं सर्वोदय-सम्पूर्ण क्रांति का संदेश वाहक

वर्ष : 41, अंक : 19, 16-31 मई, 2018

प्रधान संपादक
बिमल कुमार
मो. : 9235772595
संपादक
अशोक मोती
फोन : 9430517733

संपादक मंडल
डॉ. रामजी सिंह भवानी शंकर 'कुसुम'

संपादकीय कार्यालय
सर्व सेवा संघ, साधना केन्द्र
राजघाट, वाराणसी-221001 (उ.प्र.)
फोन : 0542-2440-385/223
ईमेल : sarvodayajagat@gmail.com
Website : sssprakashan.com

शुल्क

मूल्य	:	05 रुपये
वार्षिक	:	100 रुपये
आजीवन	:	1000 रुपये

खाता संख्या : 383502010004310
IFSC No. UBIN-0538353
Union Bank of India
Rajghat, Varanasi

इस अंक में...

1. नये भारत और भारतीय राष्ट्रवाद के... 2
2. स्वराज का धागा... 3
3. भारत की नियति को पुनर्परिभाषित... 7
4. शाख-पत्तियों में खो न जाएं... 9
5. पंत और प्रकृति... 12
6. उपन्यास - 'बा'... 17
7. गतिविधियां एवं समाचार... 19
8. कविताएं... 20

संपादकीय

नये भारत और भारतीय राष्ट्रवाद के शिल्पी नेहरू

जब हम पं. नेहरू को स्वतंत्रता आंदोलन और भारतीय राष्ट्रवाद का शिल्पी कहते हैं, तो कुछ लोग नेहरू को स्वतंत्रता आंदोलन का महज एक लाभार्थी मानते हैं। एक दूसरा प्रश्न भी खड़ा होता है कि जिस नेहरू ने गांधी के 'हिन्द स्वराज्य' को एक तरह से नकार ही दिया तो फिर नेहरू को गांधी का सहयोगी और नये भारत का शिल्पी कैसे माना जाय?

गांधी और नेहरू दोनों की पृष्ठभूमि और सोच में काफी भिन्नता थी। दोनों की उम्र में बाप-बेटे की उम्र का फासला था, कम-से-कम 20 वर्ष का अंतर। नेहरू इंग्लैंड में पढ़ाई के दौरान फेबियन समाजवाद से प्रभावित थे और ऑस्कर वाईल्ड और बर्नार्ड शॉ जैसे महानुभावों के माध्यम से आइरिस सम्राज्य विरोधी आंदोलन से सीख लेकर भारत को स्वतंत्र करने की राह ढूंढ़ने में लगे थे। इसमें कोई शक नहीं कि नेहरू एक निश्छल व स्पष्ट मानवतावादी थे और सदा दिल की पुकार सुनते थे। यहां तक कि नेहरू के पिता मोतीलाल नेहरू जो बड़े जाने-माने बैरिस्टर थे, उन्हें स्वयं नेहरू ने ही राष्ट्रीय आंदोलन में खींच लाया था। बेटे ने ही बाप की दृष्टि बदल दी थी। नेहरू के पास जो वैश्विक दृष्टि थी, वह उन्हें अपने पिता से नहीं प्राप्त हुई थी बल्कि स्वयं की विकसित दृष्टि थी।

पं. नेहरू की पुस्तक 'डिस्कवरी ऑफ इंडिया' के 1946 में गांधी की शुरुआती दिनों में राष्ट्रीय आंदोलन में उभर रही केन्द्रियता और निराशा में डूबा हुआ भारतीय मध्यम वर्ग के रीति-रिवाज की खूंट से बंधे हालात का चित्रण देखने को मिलता है, जिस संबंध में रवीन्द्रनाथ टैगोर ने भी कहा : 'हम अपने समृद्ध अतीत के मृत अध्यायों पर निर्भर नहीं हो सकते।' लेकिन नेहरू ऐसे ही हालात में गांधी के भारत में आगमन को स्वच्छ हवा का एक खुशनुमा झोंका बताया—'ऐसे वक्त में गांधी आये...बेहद उधेड़-बुन में मुल्क डूबा हुआ था। वह एक स्वच्छ हवा के झोंके की तरह थे, हम उस झोंके में गहरा सांस ले पाये। वे एक प्रकाश की झलक के समान थे, जिसने हमारे सामने पसरे अंधेरे को चीरकर हमारी आंखों के ऊपर बंधी पट्टियों को खोल दिया। वे एक तूफान की तरह थे, जिन्होंने हमारी जिन्दगी को उलट-पुलट दिया। वे ऊपर के थोपे हुए नहीं, बल्कि जनता के बीच से उभरे थे। उनके संदेशों का मर्म था 'अभय'।'

गांधी-नेहरू के संबंध के विषय में हम चाहे जैसी अटकलें लगायें, इतना तो स्पष्ट था कि गांधी और नेहरू दोनों बड़े निर्भीक व्यक्तित्व के स्वामी और सत्यान्वेषी थे, मतभेद को मनभेद नहीं मानते थे। गांधी विकास का केन्द्र गांव को बनाना चाहते थे, परंतु नेहरू का भरोसा भारत में औद्योगीकरण कर भारत को एक नया भारत बनाने पर था। गांधी धर्म को राजनीति और शिक्षा दोनों का एक आवश्यक अंग मानते थे, जबकि नेहरू को धर्म से जैसे चीढ़ थी। गांधी ने देश के विकास प्रारूप बनाने से पहले नेहरू को अपनी पुस्तक 'हिन्द स्वराज' पढ़ने की नसीहत दी लेकिन नेहरू को उनकी कई बातें अव्यवहारिक लगी थीं और इसलिए कहा था कि अब हमें आधुनिक परिवेश में अलग ढंग से सोचने की जरूरत है।

नेहरू ने स्पष्ट कहा कि अभी हमारे सामने सवाल 'सच बनाम झूठ' और 'हिंसा बनाम अहिंसा' का नहीं है। सभी का प्रयास होना चाहिए कि आपसी सहयोग एवं शांतिपूर्ण रास्ता हमारा ध्येय हो और एक ऐसे समाज का निर्माण करना हमारा उद्देय हो, जो हमें गांधी के आदर्शों के रास्ते पर ले जाने को प्रेरित करे।

नेहरू ने कहा : 'आमतौर पर माना जाता है कि गांव में रहने वाले लोग बुद्धिमता और सांस्कृतिक तौर पर पिछड़े हुए होते हैं। एक पिछड़े हुए वातावरण में कोई प्रगति नहीं हो सकती बल्कि संकुचित विचारों वाले लोगों के झूठ व हिंसक होने की संभावना ज्यादा रहती है।' नेहरू अपने तेजी से हासिल करने वाले लक्ष्यों को स्पष्ट करते हुए गांधी को स्पष्ट किया मसलन खाद्य सुरक्षा, कपड़े, आवास, शिक्षा, स्वच्छता, यातायात का आधुनिक साधन का विकास और भारी उद्योग एवं निरंतर प्रगति उनकी न्यूनतम लक्ष्य है, जो किसी देश या व्यक्ति के लिए अनिवार्य है और उन्हें वे अधिकाधिक तेजी से हासिल करना चाहते हैं।

नेहरू बड़े ही दूरदृष्टि वाले थे, जो 13 मार्च 1948 को सेवाग्राम में उनके दिये भाषण से स्पष्ट है, उन्होंने भाषण में कहा था : देश के दो टुकड़े तो हो गये, लेकिन आगे चलकर और भी टुकड़े हो जाने का डर है। हम फुटकर सवालों में उलझ जाते हैं। जो बातें अहम हैं, वे पिछड़ जाती हैं। अगर बुनियादी सवाल से आप अपने को जोड़ न दें तो प्रचलित धारा से दूर पड़ जाते हैं। आज तक गोरों की गुलामी थी। अब डर है कि देश के टुकड़े-टुकड़े होकर भीतरी गुलामी आयेगी। बुनियादी सवालों से अपने आपको अलग रखकर कोई संस्था सेवा नहीं कर सकती।

निःसंदेह आज जो नया भारत है उसका शिल्पकार तो नेहरू ही थे। गांधी के बाद जो देश के महान व्यक्तित्व के रूप में हम जयप्रकाश और लोहिया को पाते हैं वे नेहरू के ही देन थे, शायद नेहरू न होते तो आज जो जेपी और लोहिया हैं, वैसे वे नहीं दिखते। नेहरू का गांधी, पटेल, लोहिया, जेपी से गहरा लगाव नेहरू को एक विशाल हृदय के नेता तथा विश्व में विश्वशांति की उनकी पहल ने उन्हें विश्व में एक शांति दूत के रूप में स्थापित किया था, जो देश और दुनिया में आज उसी रूप में कायम है।

इस बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी जेपी के भाई और दुनिया के बच्चों के चाचा नेहरू को उनकी पुण्यतिथि पर कोटिश नमन् व स्मरणांजलि!

–अशोक मोती

स्वराज का धागा

❑ गांधी



सदंर्भ है चरखा। जेल से छूटने के बाद गांधीजी चरखा संघ के साथियों के बीच बोल रहे हैं पर छू रहे हैं देश के सामने खड़े अनेक प्रश्नों को। इसमें जमीन, जायदाद वाली संस्थाओं की चर्चा है और यह भी है कि बिना एक कौड़ी रखे भी समाज का काम कैसे किया जा सकता है। वे कहते हैं : ''आज हम गिरे हुए हैं और इसी हालत में हमें काम करना है।'' यह सब काम कैसे करना है? वे बताते हैं : ''हम अपने काम को सरल कर दें, मन में कुछ मैल न रखें, सारी झंझटों का फैसला कर दें, आपस का झगड़ा मिटा दें।'' स्वराज्य के धागे का छोर पकड़ कर गांधीजी पूरे समाज के उत्तर खोज रहे हैं। –सं.

हमें मिलकर दो बरस से अधिक समय हो गया। इन दो बरसों में बाहर जो कुछ हुआ, उसका कुछ-कुछ परिचय मुझे मिल गया है। कुछ-कुछ कहने का मतलब यह कि पूरा-पूरा नहीं। इन दो वर्षों में मानों एक युग बीत गया। इस अर्से में सारे हिन्दुस्तान पर विपत्ति आ गयी। इसमें चरखा संघ थोड़े ही बच सकता था।

आज हम फिर से इस स्थिति में आ गये हैं और कुछ काम कर सकते हैं, लेकिन यह हमारे लिए काफी नहीं है। चरखा संघ की बहुत-सी संपत्ति नष्ट हो गयी है या सरकार के कब्जे में पड़ी है। हमारे कई साथी आज यहां नहीं हैं। जिन्होंने चरखा संघ में विशेष रूप से सेवा की है, जो इसके ट्रस्टी हैं, वे आज हमारे बीच नहीं हैं। लेकिन मैं समझ गया कि इतनों से भी हम कारोबार चला सकते हैं। वे चलायेंगे, इतना आश्वासन मिल सकता है।

जेल में मैंने काफी विचार किया और जिस नतीजे पर पहुंचा उसे संक्षेप में कहूंगा।

सबसे बड़ी बात जो मैंने जेल में पायी, वह यह थी कि मैंने देखा कि चरखा संघ की हस्ती मिट सकती है। सरकार ने उसे मिटाने की काफी चेष्टा की। हमारा काम कुछ-न-कुछ चलता तो रहा, लेकिन मैंने देख लिया कि सल्तनत चाहे तो हमें नाबूद कर सकती है। यानी मेरी जो कल्पना रही कि इस देश में अब चरखे की प्रवृत्ति तो किसी हालत में नाबूद नहीं हो सकती, सिद्ध नहीं हुई। मैं जल्दी से हार कबूल करने वाला आदमी नहीं हूं; लेकिन जेल ही में मैंने पाया कि हम सरकार की दया पर जीते हैं। यह बात मुझे चुभती है। मेरा बस चले तो केवल ईश्वर की दया पर जिन्दा रहूं और किसी की नहीं। वैसे तो कोई आदमी दूसरों की सहायता के बिना जिन्दा नहीं रह सकता। यह ईश्वरीय न्याय है। लेकिन मैं उस मदद की बात नहीं कर रहा हूं।

मेरी जो कल्पना है उस पर मेरी सारी प्रवृत्तियां खड़ी हैं। उस कल्पना पर चरखा संघ की भी नींव डाली गयी थी। दक्षिण अफ्रीका में मैंने पाया कि अगर अहिंसक तरीके से हिन्दुस्तान को जिन्दा रहना है और आगे बढ़ना है तो चरखे के ही सहारे वह होगा—चरखा ही उसका प्रतीक हो सकता है। दूसरे प्रतीकों से हम शक्ति पा सकते हैं, लेकिन वह शक्ति जगत का कल्याण करने वाली नहीं हो सकती। जेल में मैंने सोचा कि हमारी चरखा-प्रवृत्ति में कुछ ऐब है, उसे सुधारना होगा। मैंने हिन्दुस्तान को कहा, चरखा चलाओ। किस तरीके से चलाना है सो भी मैं ठीक-ठीक जानता था। परंतु जिस दृष्टि से और जिस दिमाग से उसे चलाना है उस पर मैंने जैसा चाहिए था, वैसा जोर नहीं दिया। मैं अपने को व्यवहार-कुशल मानता हूं। व्यवहार के पहलू पर ही सब साथी जोर देते रहे। उसे मैंने बरदाश्त किया। उसमें मैं साथ भी देता रहा। आज अब मैं सिर्फ इतना ही कहता रहूं कि चरखा चलाओ तो हमारा काम नहीं चलेगा। अब हम काफी चल आये हैं।

मैं सोचता रहा कि अब आगे कैसा काम चलाया जाये। यह भी सोचता रहा कि संघ को अपने ही हाथों क्यों न मिटा दूं? जो कुछ जायदाद और पैसा है, वह लोगों में बांट दूं। मैंने देखा कि जब तक चरखे का पैगाम हम घर-घर तक नहीं पहुंचाते तब तक हमारा काम अधूरा ही है। यही कारण है कि हम अपने आदर्श से अभी बहुत दूर हैं। सात लाख देहात पड़े हैं। इनमें कई देहात ऐसे होंगे जिनको हमारी चरखा प्रवृत्ति क्या चीज है, इसका पता नहीं है। यही हमारा ऐब है। इस बात पर आप विचार करें।

इसी विचारधारा में से विकेन्द्रीकरण की बात निकली है। मैंने सोचा, यदि यह सिद्ध हो सके तो कितना अच्छा हो। मैंने यह भी सोचा कि मेरे मार्ग में कठिनाइयां बहुत हैं। मेरा दावा है कि चरखे के विषय में जितना विचार, जितनी साधना, मैंने की है, इतनी शायद ही किसी ने की है। यह दावा बड़ा है, इसमें अभिमान भी हो सकता है। लेकिन यदि मैं मौके पर यह न कहूं तो वह भी झूठी नम्रता होगी। जेल में भी मैंने चरखे को छोड़ अन्य किसी चीज का चिन्तन नहीं किया।

मेरी सारी प्रवृत्तियों की सारी शक्ति, सविनय भंग की मेरी सब शक्ति मैंने चरखे से पायी है। जितना परिश्रम मैंने चरखे के लिए उठाया है, जितना द्रव्य लगाया है, उतना

दूसरी प्रवृत्तियों के लिए नहीं उठाया। तिलक स्वराज्य फंड का करोड़ रुपया भी तो अधिकांश रूप से हमने चरखे की ही प्रवृत्ति में लगाया। इस बात को लेकर मुझ पर काफी इलजाम भी लगाये गये। किन्तु वे मेरे लिए स्तुतिवाक्य हैं, क्योंकि जो कुछ मैंने किया वह सोच-समझकर किया, जान-बूझकर किया। किसी को धोखा देकर थोड़े ही किया। जो पैसा चरखे के पीछे लगाया, जनता को समझाकर ही लगाया। इसी का परिणाम यह संस्था बनी।

जितना मैंने विचार किया, जितना साहित्य पढ़ा, सबके बल पर मैं दावे से कह सकता हूं कि मेरी साधना तीव्र होने पर भी वह अपूर्ण रही। मेरा अभ्यास जितना चाहिए, उतना संपूर्ण नहीं हुआ। इसे मुझे कबूल करना चाहिए। मेरे इन शब्दों में आज ज्यादा शक्ति है, क्योंकि इन बातों को मैं आज अधिक स्पष्ट रूप से देख रहा हूं।

आप सब जो आज यहां आये हैं, वे चरखा संघ के लोग हैं या संघ के प्रति या मेरे प्रति सहानुभूति रखने वाले हैं, या जनता के प्रतिनिधि हैं। हमारे पीछे जनता का कितना बल है वह हम दिखा सकते थे। आंदोलन में जिस प्रकार का बल हिन्दुस्तान ने बताया, उसे हम सच्चे रास्ते ले जा सकते थे; लेकिन वह न कर सके। इसमें दोष आपका नहीं है, मेरा है। यहां जो मैं यह कह रहा हूं सो आपको दोष देने के लिए नहीं, किन्तु मेरी और आपकी बुद्धि पर प्रहार करने के लिए।

हमने चरखा चलाया, किन्तु सोच-समझकर नहीं, यंत्र की तरह चलाया। चरखे में जितना अर्थ भरा पड़ा है, उसे आप अपना लेते तो, मैं उसमें से जितना अर्थ निकालता हूं, उतना ही अर्थ आप भी उसमें से निकालते। राजकरण भी उसमें भरा पड़ा है। लेकिन वह धोखाबाजी का राजकरण नहीं है। शुद्ध सात्विक राजकारण चरखे में जितना भरा पड़ा है, उतना अन्य किसी चीज में नहीं है। यदि यह सही है, तो फिर हम जो कहते हैं कि सूत के धागे में स्वराज्य है उसका और क्या अर्थ है? उसका अर्थ यह हरगिज नहीं कि सूत का धागा टूटा वैसे ही स्वराज्य भी टूटा।

हम पर इलजाम लगाया जाता है कि चरखा संघ वाले, ग्रामोद्योग संघ वाले, गांधीवादी सब जड़ होते हैं। लोगों की उन पर श्रद्धा है, लेकिन वे जनता को देश के सब हालत ठीक तरह से नहीं बता सकते। मार्क्स का साहित्य हमारे बीच आ रहा है। इन बाहरी शक्तियों के प्रभाव के सामने वे टिक नहीं सकते।

जब हम अपने को अहिंसा के पुजारी बतलाते हैं, तब हम अहिंसा की शक्ति क्या है, बतला न सकें तो हम कैसे गांधीवादी? असल में तो गांधीवाद ऐसी कोई चीज ही नहीं है। वास्तव में कुछ हो तो वह अहिंसावाद है। चरखा संघ का हर एक व्यक्ति अहिंसा की जीवित मूर्ति होना चाहिए। अहिंसावादी या गांधीवादी कहो—तेजस्वी होने चाहिए। आज तो 'गांधीवादी' शब्द गाली हो गया है। वह शब्द स्तुति-सूचक नहीं रहा। हम अहिंसामय नहीं हैं सो स्वीकार लें; यदि अहिंसामय होते तो आज हर एक देहात में चरखा पाते। मैं कबूल करता हूं कि मैं यह नहीं कर सका। यदि यह इल्म मैंने पाया होता तो कम-से-कम सेवाग्राम में तो उसका दर्शन करवाता। लेकिन अभी तो यहां के लोगों के हाथ में चरखा रख भी दूं तो भी वे उसे नहीं अपनाते। हम उन्हें ज्यादा पैसा देते हैं, सिखाते हैं, अन्य काम आदि देकर लालच भी दिखाते हैं, तरह-तरह से उनकी सेवा करते हैं तो भी हमें सफलता नहीं मिल रही है। फिर भी चरखा की शक्ति पर का मेरा विश्वास अटल है। मैं खुद उसका अध्यक्ष बना फिर भी नाकामयाब बैठा हूं।

इसी से कह रहा था कि, हम यह सब न कर पाये, इस बात को स्वीकार कर लें। यह बात नहीं है कि हममें त्यागी कम हैं। काफी त्यागी भाई-बहन हमारे में पड़े हैं। मैं उनकी वंदना करता हूं। एक-एक की याद करता हूं तो मेरा हृदय भर आता है। मेरी आत्मा कहती है कि जहां इतने त्यागी कार्यकर्ता पड़े हैं, उस देश की अवनति हो ही नहीं सकती। परंतु इतना त्याग होते हुए भी मुल्क की आजादी नहीं आयी। आजादी आ तो रही है; कदाचित् हम मानते हैं उससे कहीं अधिक जल्द आ रही है। लेकिन उससे मेरा पेट नहीं भरता। मैं अपने खुद को पूछता हूं कि इसमें तेरा हिस्सा कितना? अपने दिल को मना लेता हूं कि हमने यथाशक्ति प्रयत्न तो किया है। इसलिए मैं किसी पर इलजाम नहीं लगाता। केवल परिस्थिति दिखा रहा हूं। परिस्थिति को अच्छी तरह पहचानना भी तो एक बुद्धि का लक्षण है। हमने जो कुछ किया, उससे हम संतुष्ट न रहें। जो कुछ हमसे बन पाया यथाशक्ति हमने किया। परंतु जो गज हमने अपने को नापने के लिए रखा था, उसके अनुसार संघ का काम यदि हम फैला सकते तो आज हममें जो निराशा-सी छा गयी है, वह नहीं दीख पड़ती। क्योंकि उससे हमने अहिंसक स्वराज्य हासिल किया होता; लेकिन वह हम न कर पाये।

आपके सामने एक कड़ा-सा नुस्खा रखता हूं। अगर आप उसके लिए तैयार हैं तो मुझे भी आप उसमें शामिल समझें। लेकिन यह उपाय अज्ञानवश नहीं स्वीकारना है, वह निरे साहस की भी बात नहीं है। बुद्धिपूर्वक विचार करके इस नतीजे पर पहुंच सको तो ही ठीक।

यदि आप ठीक निर्णय पर पहुंचे तो आप चरखा संघ को बिलकुल बंद कर देंगे। उसकी जो-कुछ जायदाद है, पैसा है, सब कार्यकर्ताओं में काम के लिए बांट देंगे। आगे का काम चलाने के लिए एक कौड़ी भी रखने की आवश्यकता नहीं। फिर सल्तनत की ओर से निकलने वाले फरमानों से घबड़ाने का कोई कारण नहीं। पूंजीपतियों के मुंह की ओर ताकने की जरूरत नहीं। हम खुद ही केन्द्र बन जायेंगे और लोग दौड़ते हुए हमारे पास आयेंगे। काम ढूंढ़ने के लिए उन्हें कहीं जाना न होगा। हर एक देहात आजाद हिन्दुस्तान का एक-एक चक्रबिन्दु बन जायेगा। बंबई, कलकत्ता जैसे शहरों में नहीं, किन्तु सात लाख देहातों में, चालीस करोड़ जनता में, आजाद हिन्दुस्तान विभक्त हो जायेगा। फिर

हिन्दू-मुसलमान का मसला, अस्पृश्यता की समस्या, झगड़े-फसाद, गलतफहमियां, हरीफाई कुछ न रहेंगी। इसी काम के लिए संघ की हस्ती है। इसलिए हमको जीना है और मरना भी है।

आप कहेंगे, यह बहुत बड़ा काम है। इसके लिए बड़ी बुद्धि की आवश्यकता है। मैं कहता हूं कि वह बड़ी बुद्धि लाइब्रेरियों में बैठकर पठन-पाठन करने से मिलने वाली नहीं है। अपने हाथों से मेहनत करके बुद्धि को तेजस्वी बनाना है। इसी में से बुनियादी तालीम का जन्म हुआ। इस तालीम में हाथ-पैरों के श्रम के जरिए बुद्धि को तेजस्वी किया जाता है। पुस्तकों को जलाना तो नहीं है, लेकिन उनका स्थान गौण है। पहला स्थान चरखे का है। उसकी साधना से ही ग्रामोद्योग, नई तालीम आदि अन्य दूसरी चीजें पैदा हुई हैं। अगर हम बुद्धिपूर्वक चरखे को हासिल कर लेंगे तो देहातों को फिर से जिन्दा कर सकते हैं। आज जो साथी संघ में हैं उनकी शक्ति जहां तक ले जा सकती है, वहां तक ही हम जा सकते हैं। मुझे विश्वामित्र की तरह नई दुनिया पैदा नहीं करनी है। वे त्रिशंकु को स्वर्ग में ले जाना चाहते थे लेकिन वह तो बीच में ही लटकता रह गया। इसलिए पृथ्वीमाता जो शक्ति दे, उसमें से ही हमें अपना काम करना है।

अगर हम अपने हाथों चरखा संघ को मिटा दें तो फिर सल्तनत क्या जब्त करेगी? क्या किसी को गोली से उड़ा देगी? हम तो चालीस करोड़ में फैल गये होंगे। अगर वह हमें उड़ा देना चाहे तो हम हंसते-हंसते चले जायेंगे। हमसे एकाध करोड़ उड़ भी गये तो क्या? समुद्र में से चुल्लू-भर बूंदें उड़ गयीं तो वह सूख नहीं जाता। उसकी शक्ति को कोई नहीं मिटा सकता। उसी प्रकार हमें दबाने की जितनी भी कोशिश होगी, उतनी ही हमारी शक्ति बढ़ती जायेगी। शर्त केवल इतनी ही है कि हम अहिंसा की शक्ति को पहचान लें।

हमको देखना यह है कि हमने चरखे का शोध पर्याप्त मात्रा में कर लिया है? क्या हमने उसके पीछे काफी तपश्चर्या की है, अविष्कार किये हैं। चरखे तो बनाये बहुत लेकिन अब ऐसा शास्त्री पैदा करना है जो यंत्र शक्ति से पूरा परिचित हो। वह ऐसे चरखे बना दे जिससे आज हम जितना सूत निकालते हैं उससे अधिक अच्छा और अधिक सूत निकाल सकें। यदि ऐसा शास्त्री न मिला तो भी मैं हारने वाला नहीं हूं। बुद्धि से बतला दूंगा कि मेरी बात सही है। यह काम विश्वास से करना है। जब विश्वास मूर्तिमान होता है तो बुद्धि के मारफत चमकता है। यह चीज अपने-आप चमकने वाली नहीं है। जब श्रद्धा अत्यधिक बढ़ जाती है और उसको दूसरा वाहन मिल जाता है, तब वह चमक उठती है। श्रद्धा कभी गुम नहीं होती, वह आगे-आगे ही बढ़ती चली जाती है। उसके सहारे से बुद्धि तेजस्वी होती जाती है और फिर श्रद्धा बुद्धिवाद का सामना कर सकती है। हमें व्याख्यान नहीं देने हैं; सच्चा वैज्ञानिक परिणाम निकालना है। हम सारी दुनिया को अपनी श्रद्धा का ऐलान करेंगे और कहेंगे तुम सच्चे नहीं हो, हम सच्चे हैं।

आज हम गिरे हुए हैं और इसी हालत में हमें काम करना है। इसलिए हम अपने काम को सरल कर दें, मन में कुछ मैल न रखें, सारी झंझटों का फैसला कर दें, आपस-आपस का झगड़ा मिटा दें। हमारे प्रतिनिधि पर हमारा पूरा विश्वास होना चाहिए। हर एक स्पष्ट वक्ता बने। हम सत्य की आराधना करते हैं तो हमें पूरा-पूरा सत्य कहना चाहिए। हममें जितना भय होगा उतना कम सत्य कहेंगे। इसी से 'गीता' ने अभय को प्रथम स्थान दिया है।

ये सब बातें सूक्ष्म अनुभव से कह रहा हूं। हमें निर्भय होकर बातें करनी चाहिए, कुछ भी छिपाना नहीं चाहिए। निजी स्वार्थ छोड़ देना चाहिए। नहीं तो हम हिन्दमाता का द्रोह करेंगे, अपनी शक्ति संगठित नहीं कर सकेंगे। स्वार्थ ने हमारे रास्ते में काफी रुकावट पैदा की है।

मैंने कल जल्दबाजी की है। कुछ काम तो कल कर लिया ही। लेकिन बाद में उसका विचार करता रहा। मैंने एक बड़ा काम उठा लिया था। वह था आपके लिए एक ढांचा बना देना और आपके सामने रखना। कल रात और प्रातःकाल इसके बारे में सोचता रहा। उसके लिए मौन भी लिया। जैसा लिखा है वैसा पढ़ता हूं :

1. चरखे की कल्पना की जड़ देहात है और चरखा संघ की कामनापूर्ति उसके देहात में विभक्त होने में है। इस ध्येय को खयाल में रखते हुए चरखा संघ की यह सभा इस निर्णय पर आती है कि कार्य की प्रणाली में निम्नलिखित परिवर्तन किये जायें :

(अ) जितने कार्यकर्ता तैयार हों और जिनको संघ पसंद करे, वे देहातों में जाएं। (आ) बिक्री भंडार और उत्पत्ति केन्द्र मर्यादित किये जायें। (इ) जो शिक्षालय हैं उन्हें विस्तृत रूप दिया जाये और अभ्यास क्रम बढ़ाया जाये। (ई) जो सूबा या जिला स्वतंत्र और स्वावलंबी होना चाहे, उसे यदि संघ स्वीकार करे तो स्वतंत्रता दी जाये।

2. चरखा संघ, ग्राम उद्योग संघ और हिन्दुस्तानी तालीमी संघ की एक स्थायी समिति नियत हो, जो नई पद्धति के अनुकूल आवश्यक सूचना निकाला करे। तीनों संस्थाएं समझें कि उनपर पूर्ण अहिंसा को प्रकट करना निर्भर है। इसके संपूर्ण विकास में पूर्ण स्वराज्य छिपा है।

तीनों संस्थाओं का ज्ञान ऐसा होना चाहिए कि सारा राजकारण उनपर अवलंबित रहे न कि वे प्रचलित राजकारण पर अवलंबित रहें। यह स्वयंसिद्ध लगना चाहिए।

इसका निचोड़ यह माना जाए कि इन तीनों संस्थाओं के कार्यकर्ता स्थितप्रज्ञ-से होने चाहिए। अगर यह संभव न हो तो हमारी कार्य रेखा बदलनी चाहिए। हमारा आदर्श नीचे जाना चाहिए। आज हमारी हालत विचित्र-सी मालूम होती है।

हमारी बहुत दीन स्थिति रही है। चरखा संघ के कई लोगों ने मुझसे बताया कि हमें

कांग्रेस वालों से सहायता नहीं मिलती। इन दो बरसों में जो अनुभव हुआ वह भी हमारे सामने है। जेल में पड़े-पड़े अखबारों में मैंने बहुत पढ़ा। जो दीनता हमारे कार्यकर्ता प्रकट करते हैं, उसका दर्शन भी मैंने किया था। अब वार्तालाप से यह सब स्पष्ट हो गया है।

जेल में मैंने सारा कम्युनिस्ट साहित्य पढ़ा। मेरे लिए यह नई चीज नहीं थी। मौलाना हजरत मोहानी जब आश्रम में चले आते थे, तब उनसे मेरी दिन-भर इन्हीं विषयों पर चर्चा चलती थी। समाजवादियों के पास आज परिश्रम करने वाले तथा डिग्री वाले कार्यकर्ता काफी संख्या में हैं। इनमें तटस्थ भाव रखने वाले लोग मेरे पास आते हैं। वे कहते हैं कि तुम्हारी जो फिलासफी है, जिस चीज को तुम मानते हो, उसको जगत के सामने रखो। जगत के सामने मैंने एक नई चीज रखी है। उसके पीछे इतिहास नहीं है। चालीस बरस में मुझे जो कुछ अनुभव मिला वही मेरी पूंजी है।

हमें कबूल करना चाहिए कि हमारे पास डिग्री वाले कम हैं। हमारे पास द्रव्य नहीं है। उतनी काबिलीयत भी नहीं है। इन सब मुसीबतों को मैं समझता हूं। उसके बीच हंसता-हंसता मैं पचहत्तर वर्ष तक चला आया। निर्भय होकर अपना रास्ता निकालता गया। वही निर्भयता आप लोगों में आये, ऐसी आशा करता हूं।

अगर इस प्रकार की निर्भयता हम में रहे तो ज्ञानपूर्वक हम अपना मार्ग काट सकते हैं। विरोधी वस्तु का मुकाबला कर सकते हैं। प्रकाश बताने का तरीका यह है कि वह अंधेरे को आगे-आगे हटाता जाये। प्रकाश का अभाव यानी अंधेरा। जगत में यही न्याय रहा है कि प्रकाश को आगे बढ़ाना है। फिर तो अंधेरे को दूसरा रास्ता ही नहीं रह जाता, सिवाय कि वह अपने को खत्म कर ले। अहिंसा का तरीका यही है। मेरे दिल में यही चीज भरी है। इसलिए मैं किसी से डरता नहीं हूं। मेरी गाड़ी गड्ढे में होकर फिर भी चली है। अहिंसा का यह जो प्रदर्शन है, वह मेरी मृत्यु के बाद ही आप देखने वाले हैं; पहले नहीं।

आज तक हम पंगु रहे हैं इसलिए हम कांग्रेस का मुंह देख रहे हैं। मानते हैं अगर कांग्रेस मदद दे, तो हमारा काम चलेगा। हममें इतनी शक्ति होनी चाहिए कि कांग्रेस वाले हमारे पास पूछने आएं कि बताओ देहात में हम कैसे काम करें। फिर चरखा संघ के बाहर कौन-सा कांग्रेस वाला रह जाता है? अगर हममें यह ज्ञान होता तो हमें आप-आपस में मेल रहता। दोनों एक दूसरे में सम्मिलित हो जाते। हम कांग्रेस का रचनात्मक कार्य करते और कांग्रेस सरकार के साथ लड़ाई का, धारा सभाओं का काम करती। ये दोनों परस्पर-विरोधी काम मालूम नहीं होते।

इसलिए सब बातों को हमें नये सिरे से और नये आग्रह से सोचना चाहिए। मैंने आपके सामने कोई नई चीज नहीं रखी है। वह अगर आप अपने जीवन में सिद्ध कर सकते हैं तो वह एक बड़ी चीज होगी। हमारी स्थिति विचित्र-सी हो जाती है। आज तक जिस ढंग से खादी का कार्य हम करते आये हैं उससे जो शक्ति मैंने चरखे के भीतर मानी है, उसे हम सिद्ध नहीं कर सकते। इस बात का मेरे दिल में कोई संदेह नहीं रहा।

जो लोग यंत्रवाद में मानते हैं वे भी हिन्दुस्तान के मित्र हैं, इनमें कोई शंका नहीं। लेकिन उनमें और मुझमें दो ध्रुवों जितना अंतर है। यंत्रवादियों के कथनानुसार शहर वाले भले ही चलें, परंतु आप देहाती लोग यदि गलती से भी उस पर चलेंगे, तो हिन्दुस्तान का नक्शा बदल जायेगा—यानी करोड़ों गरीब मर जायेंगे और एक करोड़ तगड़े योद्धा यहां रह जायेंगे! मुझे 125 वर्ष जीने की अभिलाषा है, परंतु 39 करोड़ को तबाह कर एक करोड़ रहें—उनतालीस करोड़ भस्म हो जाएं, यह मुझसे नहीं देखा जायेगा। मेरी तालीम तो यह है कि जो सबसे अधिक पंगु है, उसकी सेवा करूं और वह चले इतने ही कदम चलूं। यही कार्य खादी के जरिए करने की इतने वर्षों में हमारी कोशिश रही है। हमारा इतिहास चंद वर्षों का है। लेकिन इतने अरसे में हमने कितने परिवर्तन किये? यदि आपकी यही राय रही कि परिवर्तन नहीं करना है, तो वही सही। मैं हार न मानूंगा। आप सब भांति सोच-विचार कर इसे हल करें। इतने लोग फिर कब मिल सकेंगे, क्या ठिकाना है। जो मेरे दिमाग में चीज आयी वह जैसे-के-तैसी मैंने आपके सामने रखी है।

अगर हम मानते हैं कि चरखा ही हमारे लक्ष्य का सर्वोपरि प्रतीक है और अगर हम आज के तरीके से अपना दावा सिद्ध नहीं कर सकते तो हमें अपनी कार्यप्रणाली बदलनी ही चाहिए।

यह नहीं कि आज तक किया सो सरासर गलत-ही-गलत था। जो कुछ हमने किया—सत्यनिष्ठा से किया और वह क्या कम था? थोड़ी-सी पूंजी में साढ़े चार करोड़ रुपये देहातों में पहुंचाए। देहातों में पैसे पहुंचाने के लिए जो खर्च किया वह परिणाम में कम है। लेकिन फिर भी हमारे मकसद के अंदाज से काम दूसरे दर्जे का हुआ। इस प्रकार के व्यापारी-काम के नीचे हमें दब नहीं जाना है। *जवाहर ने मेरे पास चीन के सहकारी कार्य की किताब भेजी है। हम जो काम कर रहे हैं, उसके मुकाबले में वहां का काम कुछ नहीं है। लेकिन काम की हैसियत से हमने कुछ भी काम नहीं किया। हम सात लाख देहातों में नहीं पहुंच सके हैं। मिलों के मुकाबले में एक प्रतिशत काम हम कर पाये हैं। फिर ऐसे अपने काम के लिए गुमान क्या करें?* इसी से मैं कहता हूं कि यदि हम यह परिवर्तन नहीं करते तो एक निरी पारमार्थिक संस्था के नाते काम करते हम रह जायेंगे। मुझे इसमें शर्म नहीं मालूम होगी। अपने दावे को सिद्ध करना है और यह करने में किसी को धोखा नहीं देना है। यदि यह करना है तब फिर शक्ति कैसे बढ़ाना है, यह सोचें। परिवर्तन करने के लिए अगर आप अपने हाथों से संघ बंद कर देंगे तो अपनी शक्ति बढ़ने वाली है।

(1-2 सितंबर 1944 को संघ की बैठक में भाषण) ❑

गतांक से आगे....

भारत की नियति को पुनर्परिभाषित करने का कार्यक्रम

❑ जयप्रकाश नारायण



आज भारतीय राजनीति में स्थापित राजनीतिक दलों की करनी से मौजूदा संसदीय व्यवस्था पर गहरे संदेह पैदा हुए हैं। 1974 के जेपी आंदोलन से जो देश में राजनैतिक, सामाजिक चेतना जगी और बाद में अन्ना आंदोलन ने देश में थोड़ी ही सही एक जागरूकता पैदा की, वह कहीं ठिठक गयी लगती है। आगे की दिशा क्या हो, यह भ्रम बना हुआ है। लोकनायक जयप्रकाश का यह साठ साल पुराना आलेख नई दिशा दिखा सकता है। –सं.

जैसा कि मैंने ऊपर दर्शाया है, यह आवश्यक नहीं कि समाजवादी दर्शन यहां अंकित की गयी सामुदायिक तस्वीर के विरुद्ध हो। परंतु उस स्थिति में, समाजवादी को संस्थाओं में कम और मनुष्य में अधिक दिलचस्पी लेनी होगी। यह विश्वास कि उत्पादन, वितरण और विनिमय के साधनों पर राज्य का स्वामित्व हो जाये और उनमें नियोजन जोड़ दिया जाये तो समाजवाद हो जायेगा, मिथ्या सिद्ध हुआ है। इस विश्वास ने आत्यन्तिक रूप लेकर स्टालिनवाद को जन्म दिया। परंतु पुराने विश्वास का स्थान लेने के लिए नये विश्वास का निर्माण नहीं हुआ है। इसके लिए समाजवादियों के पास जाना होगा—उन्हें टालस्टाय, रस्किन और मॉरिस के पास और मार्क्सोत्तर काल के सामाजिक आदर्शवादियों, गांधी और विनोबा के पास जाना होगा। फ्रांस के 'कार्य-समुदायों' से समाजवादियों को बहुत-कुछ सीखना है और इसी प्रकार इजराइल के 'किबुत्सों' से तथा भारत के ग्रामदानी गांवों से भी उन्हें बहुत-कुछ सीखना है। मार्क्स में आज भी जो महत्त्व का है, और विज्ञान की जो सर्वोत्तम देन हो सकती है, वहां भी समन्वयीकरण की विशाल क्षमता आवश्यक होगी, परंतु यदि समाजवाद को अपनी पुरातन प्रेरणा और आदर्शवाद को पुनः प्राप्त करना है, तो यह समन्वयीकरण का काम उठाना ही होगा। जैसा कि लेनिन ने बताया है, मार्क्स ने जर्मन दर्शन, फ्रेंच समाजवाद तथा प्रतिष्ठित ब्रिटिश अर्थशास्त्र को समन्वित कर अपनी शानदार और श्रेष्ठ विचारधारा का निर्माण किया था। ऐसे एक सृजनात्मक समन्वय का कार्य नये सिरे से करने के लिए एक नैतिक एवं बौद्धिक प्रतिभा का उदय होना आवश्यक है, जिससे समाजवाद, अतीत का एक 'विगतवाद' बनने के बजाय, भविष्य का एक विश्वास बन सके।

(ख) समुदाय की कल्पना स्पष्ट रूप से प्रस्तुत नहीं है। जिस अंश तक वह है, कागज पर ही है। इसका मुख्य कारण यह है कि समुदाय के 'विकास' का कार्य राज्य के ऐसे 'सेवकों' को सौंपा गया है, जिनको उसमें विश्वास नहीं है, जो समुदाय को नहीं समझते हैं और स्वयं किसी समुदाय के अंग नहीं हैं। सामुदायिक समाज-व्यवस्था में किसी समुदाय का अंग होने की कल्पना बड़े महत्त्व की है। उदाहरणार्थ, स्विट्जरलैंड में, जहां समुदाय का अस्तित्व आज भी है, वहां का प्रत्येक निवासी अपनी गृह-कुटुम्ब (गृह-कम्यून) का अंग है। समुदाय के सरकारी विकासकर्ताओं के पास समुदाय का अंग होने की ऐसी कोई कल्पना नहीं है, और वह एक कारण उनके प्रयासों की बहुत प्रगति नहीं हो पाती। यह भी कहा जा सकता है कि यद्यपि भारतीय गांव का रूप समुदाय की कल्पना से दूर है, तथापि उसके निवासियों में अपने गांव के और एक-दूसरे के अंग होने की भावना है। यह भावना कमजोर अवश्य है; फिर भी वह है। सामुदायिक विकास के कार्यक्रम और इसके प्रभारी अधिकारी, व्यवहार में, इस भावना को पुष्ट करने का बहुत कम प्रयास करते हैं। यह कार्यक्रम कृषि एवं उद्योग के विकास पर तथा विद्यालय, चिकित्सालय, सामुदायिक केन्द्र, गांव तक पहुंचने के मार्ग आदि के निर्माण पर जितना बल देते हैं, उतना समुदाय की भावना के विकास पर नहीं। पिछला कार्य अधिक कठिन है, परंतु सामुदायिक विकास को सार्थक बनाने के लिए उसे करना ही है। इसके लिए समुदाय का स्पष्टतर चित्र प्रस्तुत एवं प्रचारित किया जाना चाहिए—इसलिए नहीं कि ऊपर से प्रेषित परिपत्रों के अनुसार वह आवश्यक है, बल्कि इसलिए कि उसमें हमारा आंतरिक विश्वास निहित है।

स्थानिक समुदाय का विकास इस ढंग से किया जाना चाहिए कि वह कल्याणकारी राज्य का लघु रूप बन जाये। प्रारंभिक समुदाय होने के नाते, उसका प्रारंभिक दायित्व प्रत्येक परिवार के लिए कार्य एवं आवास का प्रबंध करने, भोजन एवं वस्त्र की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए उत्पादन का आयोजन करने तथा प्राथमिक शिक्षा एवं प्राथमिक आरोग्य सेवा की व्यवस्था करने का दायित्व होना चाहिए। सर्वप्रथम समुदाय को जरूरतमंद और गरीब लोगों का भार उठाना होगा और समुदाय के प्रत्येक कमाने वाले सदस्य को, वह चाहे जहां

भी रहता हो, समुदाय की सामाजिक सुरक्षा संबंधी प्रारंभिक आवश्यकताओं की पूर्ति की दिशा में अपना अंशदान करना होगा। समुदाय में रहने वाले प्रत्येक परिवार को, अपना कल्याण करते हुए, प्रत्येक दूसरे परिवार के कल्याण को ध्यान में रखना होगा। गांव के आर्थिक साधनों और कार्यों का प्रथम लक्ष्य समुदाय का कल्याण—साधन करने की दिशा में होना चाहिए। सामुदायिक विकास के क्रम में ये बातें ही सर्वाधिक महत्त्व की होंगी।

(ग) सामुदायिक विकास तथा अन्य ग्रामीण विकास के कार्यक्रमों में संतुलित कृषि-औद्योगिक समुदायों की कोई कल्पना नहीं है। इसमें संदेह नहीं कि ग्रामोद्योग को विकसित किया जा रहा है; परंतु यह केवल बेरोजगारी की समस्या हल करने और ग्रामीणों के जीवन-मान को ऊंचा करने की दृष्टि से किया जा रहा है। ग्रामोद्योग-विकास के कार्यक्रमों के पीछे किसी नये सामाजिक-आर्थिक संगठन की कल्पना नहीं है; या, यह कहना शायद अधिक सही होगा कि इस कार्यक्रम के पीछे जो कल्पना है, वह एक परमाणवीकृत, नागरिक एवं ग्रामीण क्षेत्रों में तीव्र रूप से विभाजित और ग्रामीण की अपेक्षा नागरिक क्षेत्रों की प्रधानता वाले समाज की ही कल्पना है। सामाजिक पुनर्निर्माण के सभी दार्शनिक विचारों के अलावा, यह दृढ़तापूर्वक संकेत किया जाना चाहिए कि यदि समाज की पिछली कल्पना कायम रहती है, तो निश्चय ही भारत के गांव स्थायी रूप से दलित क्षेत्र ही रह जाने वाले हैं।

(घ) इस दोष पर अंशतः पूर्व में विचार किया जा चुका है। वहां यह बताया गया कि यदि ऊपरी रचना व्यक्तिवादी बनी रहती है तो उस आधार पर समुदाय स्थापित करने का कोई अर्थ नहीं है। ऐसे समाज में कोई सामुदायिक वातावरण नहीं रहेगा और उस वातावरण के अभाव में आधारभूत समुदायों को टिकाये रखना असंभव होगा। एक उदाहरण देकर इसे स्पष्ट कर दूं। राजनीतिक संस्थाओं को ही लीजिए। यह सामान्य रूप से देखा गया है कि ग्राम पंचायतें अभीष्ट रूप से काम नहीं कर रही हैं। इसके अनेक कारण हो सकते हैं। लेकिन मेरी निश्चित मान्यता है कि इसका एक सबसे महत्त्वपूर्ण कारण वर्तमान परमाणवीकृत राज्य-व्यवस्था का विभाजनकारी प्रभाव है। उचित रूप से ही यह प्रयास किया जा रहा है कि पंचायतों का चुनाव यथासंभव सर्वसम्मत हो, विभिन्न दल अपने-आपको उसमें प्रक्षिप्त न करें, और गांव समुदाय के रूप में काम करें। उच्चतर सभाओं (जैसे विधानसभा, लोकसभा) के चुनाव में वे ही ग्राम-समुदाय पुनः विभिन्न संघर्षरत दलों के पीछे पंक्तिबद्ध व्यक्तियों के रूप में बिखर जाते हैं। परिणामतः समुदाय विघटित हो जाता है और पंचायत स्वस्थ रीति से अभीष्ट दिशा में काम नहीं कर पाती।

आर्थिक तथा अन्य संस्थाओं एवं कार्यों के संबंध में भी यही होता है। उदाहरणतः, योजना-निर्माण की प्रक्रिया नीचे गांव से और क्षेत्र से शुरू होकर ऊपर की ओर नहीं जाती; बल्कि ऊपर केन्द्र से शुरू होकर नीचे आती है। यह ढंग समुदायों के विकास में सहायक नहीं होता, क्योंकि उन्हें इसके लिए अवसर नहीं मिलता कि वे समुदाय के रूप में स्वयं योजना कर सकें और फिर अपनी सभी योजनाओं को समन्वित कर क्रमिक रूप से विभिन्न स्तरों पर योजनाएं तैयार कर सकें। आर्थिक संस्थाएं भी, चाहे वे राज्य की हों या निजी, उच्च-स्तरीय संगठन हैं जिनके कार्य, समुदाय के बाहर से, आर्थिक 'आक्रमण' के रूप में होते हैं और वे समुदायगत जीवन को अस्त-व्यस्त और विघटित करने की दिशा में प्रवृत्त होते हैं। और, यह क्रम जारी रहता है।

सामुदाकि विकास के वर्तमान कार्यक्रमों के संबंध में इतनी बातें हुईं। आज अपनी राज्य-व्यवस्था की बुनियाद की ओर हम लौट चलें। जैसा कि कहा जा चुका है, बुनियाद स्वशासी, स्वयंपूर्ण, कृषि-औद्योगिक, नागरिक-ग्रामीण, स्थानिक समुदाय ही होने चाहिए। स्थानिक समुदाय की सर्वोच्च राजनीति संस्था सामान्य सभा अथवा ग्रामसभा हो; गांव के सभी वयस्क उस ग्रामसभा के सदस्य माने जायें। कार्यपालिका अथवा पंचायत का चयन उक्त सभा की सामान्य सहमति से हो। कोई उम्मीदवार न हो, यानी कोई किसी पद के लिए खड़ा न हो। प्राचीनकाल के समान, सभी चयनात्मक पदों के लिए स्पष्ट रूप से निर्धारित योजनाएं होनी चाहिए। कोई व्यक्ति एक निश्चित अवधि से अधिक किसी एक पद पर नहीं रहे। पंचायत विभिन्न दायित्वों से भारित उपसमितियों के माध्यम से काम करे। पंचायत में या उसकी उपसमिति में राज्य सरकार द्वारा नियुक्त या मनोनीत कोई अधिकारी या सदस्य नहीं होना चाहिए।

यह शंका प्रकट की जा सकती है कि आज जो ग्रामीण जातियों और गुटों में बंटे हुए हैं और जिनके परस्पर विरोधी हित हैं, उनके बीच सामान्य सहमति कभी हो सकती है क्या? यह सुविदित है कि हजारों वर्षों तक भारत के गांव सामान्य सहमति से अपनी कार्यकारी परिषदों का चुनाव करते रहे। वे गांव किसी भी रूप में समजातीय और आदर्श समुदाय नहीं थे। इसलिए, यह मान लेने का कोई कारण नहीं है कि सदियों के अनुभव की पुनरावृत्ति नहीं हो सकती। ग्राम परिषदों या पंचायतों के चुनाव की एकमात्र वैकल्पिक पद्धति गुट्टी चुनकर या भाग पत्रक के द्वारा चयन करने की विधि में अलोकतांत्रिक कुछ नहीं है। इसलिए मेरा तो यह दृढ़ विचार है कि गांवों को सामान्य सहमति से अथवा भाग्य पत्रक निकालने की विधि से चुनाव करने का अधिकार दिया जाना चाहिए; अथवा, यह वैकल्पिक नियम रहे कि ग्रामवासी पहले पूर्वोक्त विधि का प्रयोग करें और उसके विफल होने पर उत्तरोत्तर विधि का सहारा लें। कुछ ऐसी ही विधि भूदान आंदोलन में अपनायी जाती है। जो भूमिहीन परिवारों में अपने बीच भूदान की भूमि के वितरण के

क्रम में सहमति नहीं हो पाती, तो निर्णय भाग पत्रक निकालकर किया जाता है। इस प्रकार किये गये निर्णयों से कभी किसी को असंतोष हुआ हो, ऐसा अनुभव नहीं है।

यह भी प्रश्न किया जा सकता है कि क्या ग्राम पंचायतें, अपने वर्तमान रूप में, ऊपर दिखायी गयी रीति से काम करने में समर्थ होंगी? युवा लोगों को उत्तरदायित्व सौंप कर सिखाने से श्रेष्ठतर कोई मार्ग नहीं है। इसी प्रकार, गांवों को स्व-शासी, स्व-निर्भर एवं स्वयंपूर्ण बनाने का एक ही रास्ता है कि उनको वास्तविक दायित्वों का भार सौंप दिया जाये। एक समय था, जब भारतीय ग्राम-गणतंत्र स्विट्जरलैंड के कम्यूनों के समान स्व-निर्मित थे, और उन्हें ऊपर से अधिकार और कृत्य प्रदान नहीं किये जाते थे। परंतु वर्तमान परिस्थिति में यदि भारतीय लोकतंत्र को एक ठोस आधार प्राप्त करना है और एक जीवित तथ्य का रूप लेना है, तो सत्ता-वितरण एवं विकेन्द्रीकरण की एक सुचिन्तित एवं साहसपूर्ण प्रक्रिया से उनका पुनर्निर्माण करना होगा। *मैं मानता हूं कि ग्रामसभा को और पंचायत को ऐसे विषयों से संबंधित दायित्व सौंपने चाहिए, जिनका वास्तविक महत्त्व है। उदाहरणस्वरूप, ग्रामसभा और उसकी पंचायत का यह दायित्व होना चाहिए कि गांव में कोई भी व्यक्ति भोजन, वस्त्र और आवास के बिना न रहे; कोई बच्चा प्राथमिक शिक्षा से वंचित न रहे; प्रत्येक व्यक्ति को प्राथमिक चिकित्सा-सेवा उपलब्ध हो। सभा तथा पंचायत को यह देखना चाहिए कि गांव शीघ्रातिशीघ्र भोजन और वस्त्र के मामले में स्वयंपूर्ण हो जाये। इसके अलावा, उन्हें ऐसी योजना करनी चाहिए कि जिससे एक निश्चित अवधि में, जैसे पांच वर्षों के अंदर, गांव में बेरोजगारी न रहे और प्रत्येक परिवार को निम्नतम जीवन-मान प्राप्त हो जाये। स्वशासन वास्तविक बने, इसके लिए यह आवश्यक है कि जीवन की अत्यावश्यक समस्याओं के मामले में स्वशासन हो।* *...क्रमशः अगले अंक में*

27 मई : पं. जवाहरलाल नेहरू पुण्य-तिथि : विनम्र नमन्

शाख-पत्तियों में खो न जाएं

जड़ की तरफ कदम बढ़ाएं

❑ **पं. जवाहरलाल नेहरू**



आप लोगों के कहने से अपने विचार आपके सामने रखूंगा। इन सब बातों के बारे में मेरे विचार साफ नहीं हैं। दिमाग में एक तरह की परेशानी है। कई बातों में उलझा रहता हूं। समय बहुत कम मिलता है। इत्तफाक से चंद मिनिट मिलते भी हैं, तो दिल में विचार आता है कि डेढ़ बरस से गवर्नमेंट में रहे, कुछ किया, बहुत कुछ नहीं किया। सही किया, गलत भी किया। जो किया उसे देखकर दिल खुश नहीं होता। इतनी मेहनत का नतीजा क्या निकला? यह भी विचार आता है कि इस तरह के काम करने में असल में देश को कोई फायदा पहुंचा रहे हैं या नहीं? मगर ये विचार भी पूरे नहीं हो पाते। दिमाग को फुरसत नहीं मिलती। कोई न कोई चुनौती, क्राइसिस सामने आती है। जो सवाल आता है उस पर उसी वक्त सोचना पड़ता है। रोज नयी-नयी बातों पर ध्यान देना पड़ता है। सारी चीजों को मिलाकर विचार करने का मौका नहीं मिला।

पहले लीग का सवाल आया। फिर देश के टुकड़े हुए। शरणार्थियों का सवाल खड़ा हुआ। दिल्ली में झगड़े हुए। आए दिन नया सवाल पेश होता रहा। दिमाग का यह हाल भी न रहा कि ठंडे दिल से कुछ सोचा जाए। विचार करने का समय न मिले, यह अच्छी बात नहीं। लेकिन यह हमारे वश की बात नहीं थी इसलिए बड़े पसोपेश में हूं। मेरे ऊपर आपने मार्गदर्शन की जिम्मेवारी डाल दी। जो बातें इस वक्त दिल में उठती हैं, आपके सामने रखता हूं।

हमारे सामने बड़े-बड़े सवाल हैं। बुनियादी सवाल हैं। खादी वगैरह ये महज शाखें हैं। जड़ के सवाल नहीं हैं। सवाल अपने में ठीक है। लेकिन उनके पीछे एक बनावटीपन, आर्टिफीशियालिटी और अनरियालिटी है। हम सोचते हैं कि खादी किस तरह की पहनें। लेकिन खादी पहनने वाले ही न रहे फिर तो सवाल ही न रहेगा कि खादी किस तरह की हो।

देश के दो टुकड़े तो हो गये, लेकिन आगे चलकर और भी टुकड़े हो जाने का डर है। हम फुटकर सवालों में उलझ जाते हैं। जो बातें अहम हैं, वे पिछड़ जाती हैं। अगर बुनियादी सवाल से आप अपने को जोड़ न दें तो प्रचलित धारा से दूर पड़ जाते हैं। आज तक गोरों की गुलामी थी। अब डर है कि देश के टुकड़े-टुकड़े होकर भीतरी गुलामी आयेगी। बुनियादी सवालों से अपने आपको अलग रखकर कोई संस्था सेवा नहीं कर सकती।

महान पुरुष अलग बैठकर सेवा कर सकते हैं। लेकिन उन्हें भी परिस्थिति के साथ अपने आपको जोड़ना पड़ता है। महात्माजी सवालों के साथ चीजों को बांध देते थे। उन्होंने खादी को आजादी के साथ जोड़ा, इसलिए वह बढ़ी। सिर्फ आर्थिक दृष्टि से वह इतनी न बढ़ती। महात्माजी में वह सिफत थी। हम बड़े सवालों को छोड़कर खादी वगैरह के बारे में सोच रहे हैं। अपने लिए अलग-

अलग दरबा बना रहे हैं। महात्माजी की निगाह समूचे देश पर रहती थी। वे बुनियादी सवाल को पकड़ लेते थे। इसलिए वे नोआखली गये, कलकत्ते गये, बिहार गये, देहली में आकर बैठ गये।

हमको काम तलाश करने की जरूरत नहीं है। काम देश भर में पड़ा हुआ है। हम देखें कि बुनियादी काम क्या है, मूल काम क्या है। बापू की मौत चिल्ला-चिल्लाकर कहती है कि वह काम कौन-सा है। रचनात्मक काम के नाम पर हम अपने-अपने खाने में काम न करें। बापू ने दिल्ली में जो काम किया, उससे सवाल की अहमियत का पता चलता है। सांप्रदायिकता के जहर का मुकाबला किये बिना हम अपनी आजादी को नहीं बचा सकते।

सवालों को हल करने का सरकार का ढंग अलग तरह का होता है। उसकी अपनी कुछ मर्यादाएं होती हैं। सिर्फ सरकार की ताकत से सवाल हल नहीं होते। मैं सरकार में हूं। दिल्ली में रहता हूं। रात-दिन पहरे में रहना पड़ता है। बाहर निकलूं तो आगे सिपाही, पीछे सिपाही होते हैं। यह इंसान की जिन्दगी नहीं है। मैं परेशान हूं। मुझे पिंजड़े में रहना पड़ता है। मेरे लिए अहमदनगर और दूसरे कैदखानों से बड़ा कैदखाना यह है। असल कैद मेरे लिए आज है। अगर यही हाल रहा तो मैं पागल हो जाऊंगा। इसे कब तक बर्दाश्त कर सकूंगा।

खतरे का सामना करना, मुसीबत का मुकाबला करना, कांग्रेस का तरीका है। उसने एक अजीब-ओ-गरीब रास्ता अख्तियार किया था। वह अहिंसा का रास्ता था। आज हम उस पर किस तरह चलें, यह तफसील की बात है।

जिस बात ने मुझे बापू की तरफ खींचा, वह कोई एक बात नहीं थी। सारी बातें मिलकर जो चीज बनती थी, उसने मुझे खींचा। खादी, ग्रामोद्योग वगैरह बातें उसमें थीं। हर टुकड़ा उसमें था। लेकिन खादी, ग्रामोद्योग वगैरह सब को निकाल दीजिए, तो भी बापू की बुनियादी बातें रह जाती हैं। खादी के बारे में हमारे ख्याल बदले भी हैं। हिन्दुस्तान के बारे में भी हमेशा वही ख्याल नहीं रहे। मैंने इन सवालों के बारे में सोचा और लिखा भी है। हमारे ख्याल बुनियादी तौर पर नहीं बदलते। लेकिन बापू के हाथों में जिस तरह ये सारी खींचने वाली बातें हो जाती थीं, उस तरह हमारे हाथों में क्यों नहीं होतीं, यह सोचने की बात है।

इन सारी ऊपरी बातों को हटाने के बाद भी बापू की जो बुनियादी बातें रह जाती थीं, उन्हीं पर आज हमला हो रहा है। उनको आज अगर हम नहीं बचाएं तो देश तबाह हो जायेगा। इसलिए जरूरत इस बात की है कि हम बुनियादी तौर से उनके रास्ते पर चलें। दूसरे रास्ते पर हम मजबूती से नहीं चल सकते। और तरीके भी हो सकते हैं। लेकिन जिन तरीकों पर हम पचीस बरस से चलते आये हैं, उनसे हटने पर हमारी कमजोरियां और भी बढ़ेंगी। आज ही हमारी कमजोरियों ने जोर पकड़ना शुरू कर दिया है। डिसरप्शन की भावना बढ़ रही है। एक पार्टिशन हुआ। उससे कितना डिसरप्शन फैला, हम सब जानते हैं। इस वक्त दूसरी रिसरप्शन की तजवीजें पेश हो रही हैं। यह सबसे खतरनाक चीज है। इसलिए हमको अच्छी बातें भी तौल तौल कर लेनी चाहिए। भाषावार राज्यों के गठन का सवाल ही ले लीजिए। इस वक्त इसे छूना खतरनाक है। मैं उसे टाल नहीं सकता। क्योंकि वह एक बुनियादी और माना हुआ उसूल है। लेकिन आज उसमें देश की तबाही है। आप अपनी शक्ति इन बुनियादी बातों पर डालिए। *शाख-पत्तियों में खो न जाइए। जड़ की तरफ कदम बढ़ाइए।*

आपकी बहस जिस दूसरे सवाल पर हो रही है, उस पर कुछ कहने का मुझे अधिकार नहीं है। जो रचनात्मक संस्थाएं काम कर रही हैं, उनसे मेरा करीब का संबंध नहीं रहा। सहानुभूति रही, दूर का संबंध भी रहा। उनका ठीक-ठीक हाल नहीं जानता। इसलिए सलाह देने का मुझे हक नहीं है। ऊपर से देखने पर ऐसा मालूम होता है कि ये संस्थाएं एक हो जाएं तो अच्छा है। मिल जाने से वे एक दूसरे की ताकत बढ़ायेंगी। लेकिन यह सिर्फ जाब्ते की बात नहीं है। हमको इस वक्त सुस्ती का मुकाबला करना है। मिलकर करने में आसानी होगी। यह जरूरी है कि हमारी शक्ति बिखरने न पाये।

अब उस बड़े संगठन की बात आती है। बापू ने लोक सेवा संघ की योजना बनायी थी। वह चीज तो ठीक थी, लेकिन बापू ने जो लिखा था, वह पोलिटिकल संस्था नहीं थी। उसके मानी तो ये थे कि कांग्रेस खत्म कर दी जाए और उसकी जगह एक नई संस्था पैदा कर दी जाये जो पोलिटिकल न हो। तब दूसरी पोलिटिकल संस्था बनानी पड़ती, क्योंकि पोलिटिकल काम तो करना ही होगा। कांग्रेस पोलिटिकल मैदान से हट जाती तो नये नाम से कोई न कोई पोलिटिकल संस्था बनती। खादी नाम बदलकर वही लोग खड़े हो जाते और वे बेकाबू हो जाते। इसलिए यह विचार किया कि इसका पोलिटिकलपना बिल्कुल ही खत्म न करें। कांग्रेस पुरानी है। उसका जो काबू मेम्बरों पर है, वह नई संस्था का नहीं रह सकता। कांग्रेस को पूरा बदलना, पूरा ओपन सेशन ही कर सकता है। ए. आई. सी. और वर्किंग कमेटी नहीं करती। जो पोलिटिकल काम में रहना चाहें, उनके लिए एक संस्था चाहिए। पोलिटिकल लाईफ तो बंद नहीं हो सकती! अब तक कांग्रेस अंग्रेजी हुकूमत का मुकाबला करती थी। अब वह काम खत्म हो गया। एक तरह से पूरा हो गया। अब उसे हुकूमत का मुकाबला करने का काम नहीं बल्कि हुकूमत करने का काम करना है। इसलिए पॉलिटिक्स में रहकर उसे नये ढंग से काम करना पड़ेगा। पोलिटिकल क्षेत्र में काम करते रहने पर वह इन रचनात्मक संस्थाओं से संबंध रखेगी।

अब अलग-अलग व्याख्यानों में जो बातें कही गयीं उनमें से कुछ को एक-एक करके लेता हूं।

ठक्कर बापा ने जो बातें कही हैं, वे तो

ठीक ही हैं। उनको हमें करना ही है। ग्रामोद्योग की बात बुनियादी है। उसको बाद में लूंगा।

काका साहब ने हिन्दुस्तानी की बात कही। आजकल जो भाषा निकल रही है, उसे हिन्दी कहूं, उर्दू कहूं, क्या कहूं, समझ में नहीं आता। पचास परसेंट भाषा मेरी समझ में नहीं आती। रेडियो पर या कभी-कभी व्याख्यानों में भी ऐसी भाषा चलती है, जो अक्सर मेरी समझ में नहीं आती। जिस तर्जुमे का किशोरलाल भाई ने जिक्र किया, वह भाषा तो मेरी समझ से एकदम परे है। *मैं प्रैक्टिकल बात जानता हूं। मैंने न हिन्दी पढ़ी, न उर्दू। चूंकि दोनों में अनपढ़ हूं, इसलिए बीच की राय रखता हूं। मुझे भी बड़ी परेशानी है कि आखिर हमारा झुकाव किस तरफ को जा रहा है। हर बात को हम धार्मिक और मजहबी ढंग से देखने लगे हैं। कल की ही बात है। असेम्बली में हिन्दी का सवाल आया। हिन्दू और मुसलमान धार्मिक और मजहबी ढंग से सोचने लगे। इस देश में हिन्दू ज्यादा हैं, इसलिए हिन्दुओं की भाषा ही राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। मुसलमान सिर्फ तेरह फीसदी हैं, इसलिए क्या यह कहा जाये कि सिर्फ तेरह फीसदी अरबी-फारसी के शब्द हों? भाषा का महजब से संबंध नहीं है। मुसलमान कहे कि मेरी भाषा उर्दू है तो मुझे नागवार गुजरता है। हम झगड़ों में उलझ जाते हैं। बुनियादी काम की तरफ कोई ध्यान नहीं देता। रूस से एक अच्छे से कोश की मांग आयी पर एक भी माकूल किताब नहीं मिली। हिन्दी-उर्दू का झगड़ा होता रहता है। दोनों में से बेसिक लफ्ज छांटने का काम नहीं होता।*

ड्राफ्ट कॉन्स्टिट्यूशन में अंग्रेजी रखी गयी है, तो वह सही रखी गयी है। न रखना, झगड़ा-फसाद बड़े पैमाने पर मोल लेना है। माना कि हमारी एक राष्ट्रभाषा होनी चाहिए। लेकिन उसके लिए यह मौका नहीं है। अच्छा काम गलत वक्त पर बुरा काम हो जाता है। दुनिया में जबान से ज्यादा डिसरप्टिव चीज कोई नहीं। जबान मजहब से भी ज्यादा दूरी को बढ़ाती है। आखिर आदमी जबान से ही तो झगड़ा करता है। अच्छे कामों में भी प्रायोरिटी का ख्याल रखना पड़ता है। खाली हिन्दुस्तानी को दक्षिण भारत के लोग लेने को तैयार नहीं थे। हम उनके साथ ज्यादती कैसे करते? इस बात पर कॉन्सिटट्यूअंट असेंबली को क्या तोड़ देते? मेरा ख्याल है कि हम इस सवाल को जरूरत से ज्यादा महत्त्व नहीं दे सकते। *काका साहब से ज्यादा राष्ट्रभाषावादी कहां है? लेकिन हम क्या करते? एक ही तरीका था, जो मौलाना साहब ने बतलाया कि पांच साल का कार्यक्रम बनायें। पांच साल तक अंग्रेजी से काम लें और राष्ट्रभाषा को बनाते रहें। कोई चार पांच हजार बेसिक लफ्जों की भाषा बनायें। डॉक्टर जाकिर साहब ने हिन्दुस्तानी तालीमी संघ के बनिस्बत जो कहा उसका जवाब मौलाना साहब दें। यों, खुद जाकिर साहब भी हाल जानते हैं।*

मैं समझता हूं कि अलग-अलग भाषणों में जो सवाल उठाये गये थे, उनमें से बहुतेरों को मैं ले चुका हूं। लेकिन असल बात तो बुनियादी काम की है। देश में इस वक्त जो फिजा और खतरा है, उसका मुकाबला करना आपका और हमारा पहला काम है।

खादी, ग्रामोद्योग वगैरह के सिलसिले में यहां पर कुछ बुनियादी बातें उठायी गयीं। इस सवाल को और सवालों से अलग रखें। कॉम्पिटिटिव एकॉनमी और एक नये सोशल ऑर्डर की बात कही गयी। देखना यह है कि इनके मानी क्या हैं? मैं कॉम्पिटिटिव एकॉनमी से दूसरा मतलब समझा हूं। जो एकॉनमी आप पेश करते हैं, वह अपने बल पर ठहर सके। अगर आज नहीं तो दस साल के बाद, अपनी टांगों पर खड़े होने का दम उसमें होगा या नहीं? सरकार मदद करे, आप उसे शुरू करें।

लेकिन बुनियादी चीज यह है कि क्या उसमें अपनी टांगों पर खड़े होने का दम है। अन्न की कमी है। अगर अन्न की कमी को हम पूरा न कर सकें, तो कोई सरकार लोगों को भूखों थोड़े ही मरने देगी? जहां तक उसका बस चलेगा, वह बाहर से अन्न लायेगी। कपड़े की कमी है। एक वैक्यूम तैयार हो गया है। अगर हम उसे खादी से न भर सके तो कोई भी सरकार, मिल के कपड़े की बात तो अलग, विदेशी कपड़ा लाये बिना नहीं रहेगी। वह लोगों को नंगे नहीं रहने दे सकती। अगर वह कपड़े की कमी को दूर करने की कोशिश नहीं करेगी, तो नतीजा खतरनाक होगा। अगर अपना कपड़ा हम बना सकते हैं तो गवर्नमेंट मदद भले ही करे। मिल हलके-हलके बंद करें और बाहर का कपड़ा बंद कर दें तो क्या वैक्यूम अपने आप भर जायेगा? अगर आज विदेशी कपड़ा या मिलों का कपड़ा वैक्यूम को भर देने लायक होता तो वैक्यूम ही न रहता। मगर वैक्यूम है, इसका मतलब यह है कि हमारे पास हमारी जरूरत के लायक कपड़ा नहीं है। यह हालत देश के लिए खतरे की है। विदेशी कपड़े और मिलों का कपड़ा आने के बाद भी कपड़े की जो कमी रह जाती है, उसे भी खादी पूरा नहीं कर सकती। ग्रामोद्योग की वस्तु गवर्नमेंट की मदद से कुछ दिनों के बाद अपनी टांगों पर खड़ी नहीं रह सकती तो वह नहीं ठहरेगी। बात कुछ पेचीदा है। मैं नहीं जानता, मैं उसे कहां तक साफ कर सका हूं। मेरा मतलब यह है कि कॉम्पिटिटिव एकॉनामी निकाल देने से सवाल हल नहीं होता।

दूसरी बात युद्ध के बारे में है। यों हम युद्ध किसी से नहीं करना चाहते। लेकिन देश रक्षा का पूरा-पूरा इंतजाम हमें करना होगा। आप कहते हैं उद्योगों की योजना देश रक्षा की दृष्टि से न की जाये। मैं अर्ज कर दूं कि ऐसा कोई उद्योग नहीं, जिसका कि देश रक्षण के साथ संबंध न हो। कपड़े से भी देश रक्षा का संबंध आता है। देश रक्षण की दृष्टि से हमें इंडस्ट्रियलाइजेशन एक हद तक करना पड़ेगा।

कॉटेज इंडस्ट्रीज से इसका मुकाबला नहीं। होम-इंडस्ट्रीज से अलग औद्योगीकरण का एक ढांचा हमें बनाना है। औद्योगीकरण से एक वायुमंडल हमने देश को दे दिया है। उसका मजदूरी की दर पर और तनखाहों पर असर होता है। लेकिन मुझे शक नहीं कि

कितना ही औद्योगीकरण क्यों न हो, तो भी पचास या सौ बरस तक ग्रामोद्योगों को बहुत ज्यादा बढ़ाने की गुंजाइश होगी। सवाल यह है कि किन-किन बातों में ग्रामोद्योग चल सकेगा और किन बातों में नहीं। आज इसका ठीक-ठीक जवाब मेरे पास नहीं है। देश रक्षण का सवाल एक ऐसा सवाल है कि जिससे सारी औद्योगिक फिजा ही बदल जाती है। बड़े-बड़े उद्योग अगर राज्य के काबू में हों तो वे नॉन-कॉम्पिटिटिव हो जाते हैं। घरेलू दस्तकारियां किन क्षेत्रों में और कहां तक बढ़ें, यह अध्ययन का सवाल है। सरकार का फर्ज है कि जिन बातों में घरेलू दस्तकारियां चल सकती हैं, वहां उनको पूरी तरह बढ़ाये।

दुनिया की बुनियादी समस्या यह है कि सारी दुनिया राजनैतिक और आर्थिक दृष्टि से केन्द्रीकरण की तरफ बढ़ती जा रही है। हम भी केन्द्रीय सरकार को अधिक अधिकार देकर उसे मजबूत बनाना चाहते हैं। सिफत इस बात में है कि हम केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण के फायदे जोड़ने की तरकीब निकालें। हम देश रखवाली के सवाल को छोड़ देंगे तो अपनी राजनैतिक आजादी भी नहीं रख पायेंगे। तो फिर आर्थिक स्वतंत्रता कैसे रख सकेंगे?

यह सवाल सीधा-सादा नहीं है। काफी पेचीदा है। बिना काते अगर खादी नहीं चलती तो यह सोचना होगा कि वह चलेगी या नहीं? उसमें इकनॉमिक आउट-टर्न का सवाल है। खुद चरखा चलाने की बात दूसरी तरह की है। चरखा तो कुछ चुने हुए लोग चलायेंगे। बाबू राजेन्द्र प्रसाद चलायें, मैं चलाऊं। इस तरह कई आदमी चला लें। ये चुने हुए आदमी एक लाख हों या दस लाख हों। वे अपने कपड़े का सवाल चाहे हल कर लें, लेकिन आर्थिक दृष्टि से कपड़े की पैदावार का सवाल हल नहीं कर सकते। वह सवाल एक दूसरे क्षेत्र से संबंध रखता है। इसलिए मैंने अर्ज किया कि इन सवालों को फिर से नई फिजा की रोशनी में सोचना होगा।

(13 मार्च, 1948 को सेवाग्राम में भाषण) ❑

20 मई : पंत जयंती : स्मरणांजलि

पंत और प्रकृति

❑ **सुरेन्द्र माथुर**

पंत जी के काव्य में प्रकृति नाना रंग और बहुमुखी वेषभूषा धारण कर प्रकट हुई है। उनके चित्रणों में प्रकृति के कोमल एवं अनुरंजनकारी स्वरूप की ही प्रधानता है। पंत जी के संपूर्ण काव्य में प्रकृति का स्थान अप्रतिम है।

आदि काल से लेकर आज तक मनुष्य और प्रकृति का अटूट संबंध रहा है। मनुष्य किसी भी अवस्था में प्रकृति से दूर नहीं रह सकता। संसार का मानव, अनंत, आकाश, मेघ, नक्षत्र, वर्षा, ग्रीष्म, पशु-पक्षी आदि से भागकर कहां जा सकता है। प्रकृति सौन्दर्य द्वारा मानव को प्रभावित करती है। उसी प्रकृति के मादक रूप पर हिन्दी के एकमात्र प्रकृति-पुजारी कवि पंत अपना तन-मन हार चुके हैं। प्रकृति से ही उन्हें कविता लिखने की प्रेरणा मिली है। वह उनकी चिर सहचरी है। *बाइरन* की भांति ही *पंत जी* मनुष्य से कम प्यार नहीं करते परंतु प्रकृति को अधिक प्यार करते हैं। इसी कारण उनके काव्य का प्रमुख विषय प्रकृति है, मानव तो गौंण है। मानव में भी जो प्रकृति अविकृत है उनकी संस्कृति दृष्टि उधर ही जाती है। पंत जी को कविता लिखने की प्रारंभिक प्रेरणा प्रकृति के सौंदर्य से ही प्राप्त हुई थी। बाल्यकाल से ही सुदूर क्षितिज तक फैली कूर्मांचल पर्वत की श्रेणियों ने उन्हें अपने नीरव सम्मेलन से सराबोर कर दिया था। मातृ-स्नेह से वंचित एकांत चिन्तन ने एवं जन्मभूमि के इस सौंदर्य ने पंत को प्रकृति का चिर सहचर बना दिया। 'वीणा से युगांत' तक की रचनाओं में सर्वत्र प्रकृति का आग्रह द्रष्टव्य है। प्रकृति सौन्दर्य के समक्ष नारी-सौंदर्य का आकर्षण भी फीका लगने लगता है। प्रकृति के प्रति अगाध प्रेम का दिग्दर्शन करने के लिए 'वीणा' की 'मोह' कविता की निम्न पंक्तियां द्रष्टव्य होंगी—

छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया,
बाले! तेरे बाल जाल में कैसे उलझा दूं लोचन।

यही प्रकृति उसके काव्य-जगत को बहुरंगा रूप देती है। प्रकृति के संबंध में कवि स्वयं कहता है—

''कविता करने की प्रेरणा मुझे सबसे पहले प्रकृति-निरीक्षण से मिली है—जिसका श्रेय मेरी जन्मभूमि कूर्मांचल प्रदेश को है। कवि जीवन से पहले भी, मुझे याद है, मैं घंटों एकांत में बैठा, प्राकृतिक दृश्यों को एकटक देखा करता था और कोई अज्ञात आकर्षण मेरे भीतर एक अव्यक्त सौन्दर्य का जाल बुनकर मेरी चेतना को तन्मय कर देता था।''

प्रकृति की अमिट छाप पंत जी के हृदय और मस्तिष्क पर पूर्ण रूप से अंकित है। वीणा काल में प्रकृति सौन्दर्य अपनी संपूर्ण सुषमा के साथ प्रतिफलित होता था, उस समय की छोटी-छोटी वस्तुएं भी कवि को आकर्षित करती थीं तभी तो कवि ने स्वयं लिखा है—

''मेरी प्रारंभिक रचनाएं 'वीणा' नामक संग्रह में प्रकाशित हुई हैं। इन रचनाओं में प्रकृति ही अनेक रूप धारण कर चपल, मुखर, नुपूर बजाती हुई अपने चरण बढ़ाती रही हैं—समस्त काव्य-पट प्राकृतिक सौंदर्य के धूप-छांह से बना हुआ है। चिड़ियां, भौंरे, झिल्लियां, झरने, लहरें इत्यादि जैसे मेरे बाल्य कल्पना के छायावान में मिलकर वाद्य तरंग बजाते रहे हैं।''

पंत जी प्रकृति के मुग्धारूप पर बालक की भांति रीझते हुए लिखते हैं—

पावस ऋतु थी पर्वत प्रदेश

पल पल परिवर्तित प्रकृति वेश
मेखलाकार पर्वत अपार,
अपने सहस्र दृग सुमन फाड़,
अवलोक रहा है बार बार
नीचे जल में निज महाकार,
जिसके चरणों में पड़ा ताल
दर्पण सा फैला है विशाल।

यही प्रकृति-प्रेम उनकी रचनाओं में व्यक्त हो सका है। बाद की रचनाओं में प्रकृति कवि के व्यक्तित्व, अध्ययन एवं कला से अनुरंजित होकर ही आ पायी है। उसमें उसका नैसर्गिक वैभव नहीं है। पल्लव में प्रकृति के एकाएक साधारण उपकरण बादल, लहर, नक्षत्र, पुष्प को लेकर कवि ने उत्प्रेक्षा को ऐसा रूप दिया है कि विषय को भूलकर हम कल्पना में खो जाते हैं। इसीलिए पल्लव को प्रकृति काव्य कहा गया है। उसी प्रकार गुंजन में प्रकृति मानव भावों की रंगभूमि है, उसमें चेतना का स्पन्दन है, प्राणों की धड़कन है, प्रकृति और मानव में एकाकार की भावना है। प्रकृति सुशृंखलित और सुव्यवस्थित है, उसमें एकस्वरता है, संगीत है। प्रकृति दुःख के क्षणों में भी मुसकान की कली बिखेरती है। गुंजन में आकर कवि ने अपनी ऐन्द्रिक अनुभूति को संपूर्ण विश्व में आत्मसात करके देखा है। प्राकृतिक चेतना इसी ऐन्द्रिकानुभूति से प्राणवती हो उठी है। विस्मय एवं कुतूहल का आधार लेकर प्रकृति का खूब शृंगार किया गया है। प्रकृति के नाना रूपों की सौंदर्य-भावना को स्त्री-सौंदर्य का आरोप करके व्यक्त किया गया है। प्रकृति के माध्यम को लेकर जीवन के बहुत से जटिल प्रश्नों का समाधान किया गया है, क्योंकि प्रकृति ही कवि की आराध्या देवी है और है आध्यापिका भी—

कुसुमों के जीवन का पल,
हंसता ही जग में देखा,
इन म्लान, मलिन अधरों पर,
स्थिर रही न स्मिति की रेखा।

कवि के लिए प्रकृति साधन और साध्य दोनों ही रही है। हां, इतना अवश्य है कि गुंजन में प्रकृति पंत जी के दार्शनिक विचारों के बोझ से दब गयी है। परंतु फिर भी कवि ने प्रकृति के इतने अधिक रूपों को वाणी एवं कल्पना से सजाया है कि हमें उसकी प्रतिभा के निखार पर आश्चर्य होता है। प्रकृति से कवि प्रभावित हुआ है, साथ ही वह उस पर मुग्ध भी है। प्रकृति प्रेम ने ही उसके हृदय में एक अज्ञात आकर्षण को जन्म दिया है, विश्व और जीवन के प्रति एक गंभीर भावना भी है। कवि ने प्रकृति से ही तादात्म्य स्थापित किया है। उसने अपनी भावनाएं तक प्रकृति के माध्यम से व्यक्त की हैं। उसका प्रकृति प्रेम गुंजन में मुखर हो उठा है। समग्र प्राकृतिक चेतना मानो प्राणवती हो उठी हैं—

खोल सौरभ का मृदु कच जाल
सूंघता होगा अनिल समोद
चूम लघुपद चंचलता, प्राण।
फूटते होंगे नव जल स्त्रोत,
मुकुट बनती होगी मुसकान,
प्रिये, प्राणों की प्राण।

प्रभात भी प्राण के मुसकाने पर सस्मित हो उठता है, उषा विहंस पड़ती है, सारा विश्व ऐन्द्रिकता में परिणत हो जाता है। यही भावना हमें वहां भी मिलती है जहां प्रकृति स्वयं पुष्पलाबी कन्या का रूप धर कर पंत के समक्ष डाली भर-भर कर फूलों का हास बनकर उल्लास, कोकिल के कुछ कोमल बोल, शरद-रजत मुसकान आदि बेचने आती और पूंछती है—

लाई हूं फूलों का हास,
लोगी मोल, लोगी मोल?

पंत जी और प्रकृति का संबंध ठीक उसी भांति है जैसे एक मित्र का दूसरे मित्र से। वह एक दूसरे की सभी बातों को जानता है। इसी कारण वे प्रकृति के किसी भी दृश्य का संश्लिष्ट चित्रण करने में समर्थ हो सके हैं। इनके प्रकृति चित्रणों की यह विशेषता है कि सारा दृश्य आंखों के समक्ष साकार हो जाता है। कवि साथ-साथ प्रकृति के उपकरणों की व्यंजना भी करता चलता है और लिखता है—

मेखलाकार पर्वत अपार
अवलोक रहा था बार बार
नीचे जल था निज महाकार
दर्पण सा फैला था विशाल।

कहीं संयोग और कल्पना के आधार पर कवि ने प्राकृतिक सुषमा का मूर्तचित्र भी प्रस्तुत किया है। वातावरण वर्षा के कारण कोलाहलपूर्ण है। ऐसे स्थलों पर ध्वन्यात्मक शब्दों का कवि ने सुंदर प्रयोग किया है। वर्षा और पर्वत में प्रश्नोत्तर की कल्पना करके कवि लिखता है—

पपीहों की वह पीन पुकार
निर्झरों का भारी झर झर।
झींगरों की झीनी झनकार,
घनों की वह गुर गंभीर घहर
विन्दुओं की छनती झनकार
दादुरों के वे दोहरे स्वर
हृदय हरते थे विविध प्रकार
शैल पावस में प्रश्नोत्तर?

अनेक स्थलों पर कवि ने प्रकृति का मानवीयकरण भी किया है। कवि ने प्रकृति को मानव आकार प्रदान किया है। चांदनी का एक चित्र देखिए—

नीले नभ के शतदल पर
वह बैठी शरद-हासिनी,
मृदु करतल पर शशि मुखधर,
नीरव अनिमिष, एकाकिनि!

कवि ने प्रकृति की एक एक वस्तु में चेतना का दर्शन किया है। उसने उसमें केवल शरीर को ही नहीं वरन् मन को भी देखा है, साथ ही मन की भावनाओं को भी। फूलों के प्याले में अपना यौवन भर-भर कर उसका उपवन मधुकरों को पिलाता है—

देखता हूं जब उपवन
पियालों के फूलों के
प्रिये भर भर अपना यौवन
पिलाता है मधुकर को!

प्रकृति और कवि में इतना नैकट्य है कि वह अपनी हृदयगत भावनाओं को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त करता है। इसी निकटता के फलस्वरूप कवि के चित्रों में सजीवता और

सौन्दर्य का पूर्ण समावेश हो सका है। प्रेयसी की सुधि आने पर मन की जो अवस्था होती है, उसका सफल चित्रण कवि ने प्रकृति के माध्यम से किया है। देखिए—

तड़ित सा सुमुखि! तुन्हारा ध्यान
प्रभा के पलक मार उर चीर,
गूढ़ गर्जन कर जब गंभीर
मुझे करता है अधिक अधीर;
जुगनुओं से उड़ मेरे प्राण
खोजते हैं तब तुम्हें निदान!!

हमें प्रकृति का संवेदनात्मक रूप भी कवि में मिलता है। प्रकृति कवि के दुःख से दुखी, दग्ध तथा आनंद में प्रमुदित और प्रफुल्लित दिखायी देती है। कवि की हृदयस्थ वेदना के कारण स्वर्णिम संध्या धधकती सी लग रही है—

धधकती है जलदों से ज्वाल,
बन गया नीलम व्योम प्रवाल
आज सोने का सन्ध्याकाल
जल रहा जतुगृह सा विकराल।

कवि ने कहीं कहीं अपनी भावनाओं को प्रकृति के माध्यम से व्यक्त न करके प्रकृति को ही भावनाओं के माध्यम से व्यक्त किया है—

गिरिवर के उर से उठ उठकर
उच्चाकांक्षाओं से तरुवर
हैं झांक रहे नीरव नभ पर
अनिमेष, अटल कुछ चिन्ता पर!

कवि ने वृक्षों की ऊंचाई को उच्चाकांक्षाओं के माध्यम से व्यक्त किया है और उनकी शांत दशा को अनिमेष, अटल और चिन्तातुर व्यक्ति से। इस प्रकार वृक्षों का मानवीयकरण करके व्यक्ति की भावनाओं के प्रकृति के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

प्रकृति को नारी रूप में चित्रित करना भी पंत जी नहीं भूले हैं। उन्होंने इस संबंध में स्वयं ही लिखा भी है—''प्रकृति को मैंने अपने से अलग सजीव सत्ता रखने वाली नारी के रूप में देखा है—'उस फैली हरियाली में कौन अकेली खेल रही मां, वह अपनी वयवाली में' पंक्तियां मेरी इस धारणा की द्योतक हैं।''

'सन्ध्या और चांदनी' शीर्षक कविताएं उनकी इस रूप में सुंदर रचनाएं हैं—

कहो तुम रूपसि कौन
व्योम से उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया छवि में आप
सुनहला फैला केस कलाप,
मधु, मंथर, मृदु मौन!

प्रकृति को भेंटने के लिए पंत का कवि पागल होकर दौड़ता है। मधुप कुमारी के गानों पर मुग्ध कवि एक साथ कातर होकर उसकी मनुहारें कर उठता है—

सिखा दो ना हे मधुप कुमारि
मुझे भी अपना मीठा गान!

पंत जी प्रकृति को सजीव मानते हैं और उसकी यवनिका में एक अंतर्शक्ति की क्रीड़ा का अनुभव करते हैं। 'शेली' की भांति वे भी प्रकृति को प्रायः पौराणिक दृष्टिकोण से देखते हैं, कहीं कहीं उनका भाव भी आदिमवासियों सा हो जाता है जो आकाश, अरुण आदि को जीवधारी समझते थे। शिशुत्व की भावना का एक उदाहरण देखिए—

कभी चौकड़ी भरत मृग से,
भू पर चरण नहीं धरते,
मत्त मतंगज कभी झूमते,
सजग शशक बन को चरते।

पंत जी कभी कभी अपने व्यक्तित्व को प्रकृति से बाहर भी खींच ले जाते हैं और पूर्णतयः पृथक होकर सूक्ष्म वैज्ञानिक दृष्टि से चित्र अंकित करते हैं—

बांसों का झुरमुट, सन्ध्या का झुटपुट
हैं चहक रहीं चिड़ियां
टीवी टी, टुट टुट।

कुछ प्रकृति चित्र स्थलों पर आध्यात्मिकता का भी आभास मिल जाता है। वह कभी प्रकृति को प्रियतम की प्रतीक्षा में मग्न पाता है—

कब से विलोकती तुमको,
ऊषा आ वातायन से,
सन्ध्या उदास फिर जाती
सूने गृह के आंगन से।

कभी वह प्रकृति के मिलन संकेत देखता है—

उठाकर लहरों से कर मौन
न जाने मुझे बुलाता कौन?

एक स्थल पर पंत जी प्रकृति को मानव हृदय की प्रतिच्छाया अथवा उसकी शिष्या घोषित करते हुए कहते हैं—

सीखा तुमसे फूलों ने
मुख मन्द देख मुसकाना,
तारों ने सजल नयन हो
करुणा किरणें बरसाना।

इसके साथ ही पंत जी ने अलंकारों की परंपरागत शैली में भी प्रकृति को विभिन्न रूपों में संजोया है। पर्वतों पर चढ़ते हुए जलदों के लिए वह हाथी का रूपक बांधते हैं—

द्विरत दन्तों से उठ सुंदर
सुखदकर सीकर से बढ़कर
भूति से शोभित विखर विखर
फैल फिर कांटों कैसे परिकर
बदल यों विविध वेश जलधर
बनाते थे गिरि को गजवर!

इस प्रकार के आलंकारिक चित्रणों में सांगरूपक का चित्र देखिए—

खैंच एचीले भ्रू सुरचाप
शैल की सुधि यों बारंबार
हिला हरियाली का सुदुकूल
झुला झरनों का झलमल हार।
जलद पट से दिखला मुखचन्द्र
पलक पल-पल चपला के मार;
भग्न उर पर भूधर सा हाय
सुमुखि धर देती है साकार।

उपमान के रूप में भी पंत ने प्रकृति का पर्याप्त चित्रण किया है। सौंदर्य वर्णन में प्रकृति के क्षेत्र से ही उपमान ग्रहण किये गये हैं। कहीं कहीं रूप साम्य की अपेक्षा अरूप सादृश्य स्थापित किया गया है। प्रेयसि के स्वभाव का चित्रण कवि इस प्रकार करता है—

ऊषा का था उर में आवास
मुकुल का था मुख में मृदुल विकास
चांदनी का स्वभाव में वास!

प्रकृति पर दार्शनिकता का भी आरोप किया गया है। वह प्रकृति के पीछे किसी

अगोचर सत्ता की झलक देखता है और विस्मय तथा कौतूहल के साथ उस सत्ता को जानने का प्रयत्न सा करता है। वह बाल विहंगिनी से पूछ ही बैठता है—

प्रथम रश्मि का आना, रंगिणि
तूने कैसे पहचाना?
कहां कहां है बाल बिहंगिनी।
पाया तूने यह गाना।

प्रभात की प्रथम रश्मि के स्पर्श से ही विहंगिनी के कण्ठ से गीतियां फूट निकलती हैं, कितने भावुक हृदयों ने इस बात का अनुभव किया होगा। यही अनुभूति जब गहरी हो जाती है तब कवि प्रकृति में एक रहस्यमय आकर्षण का अनुभव करने लगता है और एक करुण विस्मय में विभोर हो कह उठता है—

क्षुब्ध जल शिखरों को जब वात
सिंधु में मथकर फेनाकार,
बुलबुलों का व्याकुल संसार
बना बिथुरा देती अज्ञात,
उठा तब लहरों से कर मौन
न जाने मुझे बुलाता कौन?

पंत जी की कविता में ऐसे उदाहरण राशि मिलेंगे। कवि प्रकृति के माध्यम से दार्शनिक सिद्धांतों को व्यक्त करता हुआ लिखता है—

अतल से एक अकूल उमंग
सृष्टि की उठती तरल तरंग,
उमड़ शत-शत बुद-बुद संसार
बूड़े जाते निस्सार!

प्रकृति के विभिन्न दृश्यों से वह जीवन की नश्वरता एवं अस्थिरता का संदेश प्राप्त करता है—

आज तो सौरभ का मधुमास
शिशिर में भरता सूनी सांस।

कोमल प्रकृति के सूक्ष्म स्पन्दनों की पंत जी को दिव्य अनुभूति है। जब प्रकृति के लीला क्षेत्र में नव बसंत का आगमन होता है तो कवि का हृदय भी एक नवीन राग और उल्लास से भर जाता है। प्रत्येक चित्र उसकी आंखों के द्वार से सीधा आत्मा तक पहुंच जाता है—

लो चित्र-शलभ सी पंख खोल
उड़ने को है चित्रित घाटी,
यह है अल्मोड़े का वसंत
खिल पड़ी निखित पर्वत-पाटी।

यदि एक ओर वह पुंज पुंज विहगों को देखकर हर्ष विभोर हो उठता है—

विहग, विहग,
फिर चहक उठे ये पुंज पुंज
चिर सुभग-सुभग

तो दूसरी ओर छाया के संश्लिष्ट चित्र में छाया को तरु के नीचे एकाकिनि देखकर उसकी अवस्था पर दयार्द्र हो जाता है—

कहो, कौन हो दमयन्ती-सी
तुम तरु के नीचे सोई
हाय तुम्हें भी त्याग गया क्या
अलि नल-सा निष्ठुर कोई।

कितनी दीन वेदना है कवि की—

अहा! अभागिनी हो तुम मुझ-सी
सजनि! ध्यान में अब आया
तुम इस तरुवर की छाया हो
मैं उनके पद की छाया!

कभी वह लहरों को उठता देखकर उसके 'स्वगीय-हुलास' उसके जग को अविदित उल्लास में अपने को निमग्न कर देना चाहता है। लहर से वह कहता है—

अरी सलिल की लोल लहर

× × ×

आ मेरे मृदु अंग झकोर
नयनों को निज छवि में बोर
मेरे उर में भर यह रोर!

इस एकात्म भाव में कैसा दिव्य आनंद फूट पड़ा है।

प्रकृति के प्रतीक विधान और सांगरूपक के अनुसार व्यापक क्रिया वर्णन भी कवि ने किया है। आधुनिकता कविता की 'प्रतीक विधान' एक प्रमुख विशेषता है, जो हमारा सारा ध्यान अपनी ओर आकृष्ट कर लेती है। प्रकृति शिक्षिका के विषय में वे लिखते हैं—

किसी के उर में तुम अनजान
कभी बंध जाती बन चितचोर,
अधखिले-खिले—सुकोमल गान,
गूंथती हो फिर उड़ उड़ भोर!

कजामिंया द्वारा वर्डस्वर्थ को कहे गये शब्द हम पंत पर भी लागू कर सकते हैं। क्योंकि कवि पंत के हृदय का सौंदर्य-विकास प्रकृति के संसर्ग से ही हुआ है। Cazamian ने wordsworth के बारे में कहा है—

To wordsworth nature appeals a formative influence superior to anyother, the education of senses and mind alike. The soul in our hearts of the deep laid seeds of our feelings and beliefs.

गुंजन का विहग सूनी प्रकृति को, सूने जीवन को और जगत को अपने गानों से मुखरित किया है—

सुप्त जग में गा, स्वप्निल गान,
स्वर्ण में भर दो प्रथम प्रभात।

पंत जी कहीं-कहीं प्राकृतिक दृश्यों के आधार पर चिन्तन भी करने लगते हैं, जैसे रूप की नश्वरता पर लिखते हैं—

हम नहीं हैं नश्वर
सत्ता का वह पूर्ण प्रकृत स्वर।

इसी प्रकार झरते हुए कुसुम को देख वे लिखते हैं—

चिरपूर्ण नहीं कुछ जीवन में,
अस्थिर है रूप जगत का मद,
बस आत्म त्याग जीवन विनिमय
इस सन्धि जगत में है सुखप्रद।

साथ ही उन्हें वसंत के आगमन की आशा भी है—

झरते हों, झरने से पत्ते—
उसे न किंचित्
नव मुकुल मंजरियों से
भव होगा शोभित!

प्रकृति वर्णन में पंत जी बड़े सिद्धहस्त कलाकार हैं। 'वीणा' के प्रकृति चित्रों के लिए आधुनिक कवि की भूमिका में उन्होंने लिखा है—"वीणा के चित्र प्रकृति के प्रति मेरे अगाध मोह के साक्षी हैं, प्राकृतिक चित्रणों में प्रायः मैंने अपनी भावनाओं का सौंदर्य

मिलाकर उन्हें ऐन्द्रिक चित्र बनाया है।'' जल पर पड़ी हुई संध्या की लालिमा और उसके स्थान पर आने वाले अंधकार की हल्की नीलिमा का चित्रण सुंदर बन पड़ा है—

लहर पर स्वर्ण रेख सुंदर
पड़ गयी नील,
ज्यों अधरों पर अरुणाई
प्रखर शिशिर से उर।

जुगनू के लिए कवि कहता है—

हरियाली घाटी में सहता
हरित स्फुलिंग सदृश फूटा वह।

इन पंक्तियों में प्रकृति का सूक्ष्म निरीक्षण किया गया है। वातावरण के चित्रण में भी पंत जी निपुण हैं। प्रशांत नीरव संध्या में डूबे हुए ग्राम का वर्णन देखिए—

नीरव सन्ध्या में प्रशान्त
डूबा है सारा ग्राम प्रान्त।
पत्रों के आनत अधरों पर
सो गया निखिल वन का मर्मर,
ज्यों वीणा के तारों में स्वर।
खग कूजन भी हो रहा लीन,
निजन गोपथ अब धूलि-हीन,
धूसर भुजंग सा जिह्म क्षीण।
झींगुर के स्वर का प्रखर तीर
केवल प्रशांत हो रहा चीर,
संध्या प्रशांत को कर गंभीर।
इस महाशांति का उर उदार,
चिर आकांक्षा की तीक्ष्ण धार,
ज्यों वेध रही हो आर-पार!

कहीं-कहीं पर वस्तु परिगणन की शैली भी अपनायी गयी है। चित्रात्मक प्रणाली का अनुकरण करके प्रकृति के बड़े रम्य चित्र उतारे गये हैं। पर्वतीय प्रकृति के सुंदर चित्र उनके काव्य में सहस्त्रों भरे पड़े हैं। लैंडस्केप उतारने में भी पंत जी अत्यन्त सफल हैं। चांदनी रात्रि में गंगा का चित्र अंकित करते हुए 'नौका विहार' में वे लिखते हैं—

शांत, स्निग्ध, ज्योत्सना उज्ज्वल!
अपलक अनंत, नीरवभूतल।
सैकत शय्या पर दुग्ध-धवल,
तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म-विरल,
लेटी है श्रान्त, कलान्त, निश्चल!
तापस-बाला गंगा निर्मल,
शशि मुख से दीपित मृदु-करतल,
लहरे उर पर कोमल कुंतल।
गोरे अंगों पर सिहर-सिहर,
लहराता तार-तरल सुंदर,
चंचल अचल-सा नीलाम्बर!
साड़ी-सी सिकुड़न-सी जिस पर,
शशि की रेशमी विभा से भर;
सिमटी हैं वर्तुल, मुदुल लहर!

जिस प्रकार शेली ने 'स्काईलार्क' से प्रार्थना की थी—

"Teach me half thy gladness.
That thy mrain must know
Such harmonious madness
From my lips, would flow
The world listen then
As I am listening now

ठीक उसी प्रकार पंत जी भी कामना करते हैं—

''गा सके खगों सा मेरा कवि
विश्री जग की संध्या की छवि।
गा सके खगों सा....
फिर हो प्रभात, फिर आवे रवि।''

प्राकृतिक वस्तुओं के रूप, रंग, ध्वनि, गंध, गति का उन्हें पूर्ण ज्ञान था और यथारूप चित्रण उनके प्रकृति काव्य की विशेषता है। उनके ध्वनि, गंध, वर्ण और गति-ज्ञान का एक एक उदाहरण यथेष्ट होगा।

ध्वनि ज्ञान—*'कभी अचानक भूतों का सा प्रकटा विकट महाआकार/कड़क-कड़क जब हंसते हम सब, थर्रा उठता है संसार।*

गंध ज्ञान—*'मिट्टी की सोंधी सुगंध से/मिली सूक्ष्म सुमनों की सौरभ।'*

वर्ण ज्ञान—*'रूपहले, सुनहले आम्र बौर*

× × ×

बन बिटपों की डाल-डाल/कोमल कलियों से लाल लाल।''

फैली नव मधु की रूप ज्वाल।

गति ज्ञान—*झूम झूम झुक झुक कर/भीम नीम तरु निर्झर/सिहर सिहर थर थर थर/करता सर मर/चर मर!*

पंत जी के काव्य में पहले प्रकृति सब कुछ थी, मानव केवल मात्र उसका उपासक था परंतु आज पुरुष प्रधान हो गया है और प्रकृति गौण। अब पुरुष प्रकृति के लिए आकुल नहीं वरन् प्रकृति ही पुरुष के लिए आकुल है। परंतु साधारणतया प्रकृति के सुंदर और कल्याणकारी रूप ने ही उन्हें अधिक लुभाया है।

प्रकृति का चेतनीकरण और मानवीरण पंत के प्रकृति के मानव तत्त्व का प्रतीक है। कल्पना के सूत्र के सहारे तारों और नक्षत्रों से लेकर सागर के गहन तल में वह भाव-मुक्ता लाने का प्रयास करते हैं और उसे अपनी मां भारती के हृदय पर सजाते हैं। पंत प्रकृति के उपासक और चित्रकार हैं। वह उन्हें देवी, मां, सहचरी एवं प्रियतमा बनाकर सम्मोहित करती है, इसके फलस्वरूप कवि का तादात्म्य इतना बढ़ जाता है कि सूक्ष्म संघटन को भी उन्होंने मानवीय रूप, व्यापार और भावानुभूति का दान दिया है। पंत ने प्रकृति को प्राणमयी चित्सत्ता देवी माना है।

इस प्रकार निष्कर्ष रूप में हम यह कह सकते हैं कि पंत जी के काव्य में प्रकृति नाना रंग और बहुमुखी वेषभूषा धारण कर प्रकट हुई है। इन चित्रणों में प्रकृति के कोमल एवं अनुरंजनकारी स्वरूप की ही प्रधानता है। पंत जी के संपूर्ण काव्य में प्रकृति का स्थान अप्रतिम है। श्री फूलचंद पांडेय का कथन पंत जी के लिए अक्षरशः सत्य है कि—'प्रकृति ही में पारस की शक्ति भर गयी थी, जिसे छूकर पंत का कवि अमर हो गया।' साथ ही पंत की प्रतिभा प्रकृति के रम्य प्रांगण में अठखेलियां करती हुई दृश्य जगत के नाना रूपों और अगोचर व्यापारों को उद्घाटित करती है। कवि ने प्रकृति के सूक्ष्म स्पन्दनों की धड़कन सुनी है और छायावाद तथा आध्यात्म चिन्तन के मोह से झलमल छाया प्रकाश का साभ्रम अपनी कृतियों में पैदा किया है। ❑

बा-बापू : 150वीं जयंती पर विशेष

'बा'

जुलू विद्रोह और कस्तूरबा

❑ गिरिराज किशोर

गांधीजी को लेकर एक बड़ा और चर्चित उपन्यास प्रस्तुत कर चुके श्री गिरिराज किशोर ने अब बा पर कलम उठायी है। बा पर कुछ भी लिखना बहुत कठिन था। नहीं के बराबर जानकारियां। 'पहला गिरमिटिया' की सामग्री जुटाने में उन्हें कोई दो हजार पुस्तकों से मदद मिली थी। और 'बा' उपन्यास लिखते समय मुश्किल से दो पुस्तकें सामने थीं। वे उन सब लोगों से मिले, जिन्हें कस्तूरबा के बारे में थोड़ी-सी भी जानकारी थी और उन जगहों पर गये, जहां बा ने थोड़ा या बहुत समय बिताया था। इस तरह बनी यह कथा, यह इतिहास बा के अलावा खुद बापू के दो और रूपों को भी सामने रखता है–पति और पिता का रूप। प्रस्तुत है 'बा' का एक अंश, जो बा-बापू : 150 के अवसर पर क्रमशः प्रकाशित हो रहे हैं।–संपा.



1909 के आरंभ में कस्तूरबा फीनिक्स में रहते हुए अपने पति को निरंतर भागदौड़ करते देख रही थी। वे कभी-कभार ही कुछ समय के लिए फीनिक्स में ठहरते थे। फीनिक्स और जोहान्सबर्ग के बीच दौड़ जारी रहती थी। दरअसल वे ट्रांसवाल में एक व्यापक सत्याग्रह की तैयारी में जुटे थे। साथ ही नेटाल से प्रकाशित इंडियन ओपिनियन के माध्यम से दक्षिण अफ्रीका में बसे भारतीयों को आंदोलन की हर गतिविधि के बारे में सूचना दे रहे थे। भले ही कस्तूरबा उन गतिविधियों से न जुड़ी हो पर वह मोहनदास के काम के महत्त्व और अनिवार्यता को समझती थी। उसे इस बात की प्रसन्नता थी कि उसके बुलाने पर हरि और गुलाब वहां आ गये थे। अपनी बहू गुलाब से कस्तूरबा पहली बार मिली थी। वह सुंदर और युवा बहू को जानने समझने में व्यस्त थी। हरिलाल से पुनर्परिचय प्राप्त कर रही थी। वह सुंदर और लंबा निकल आया था। आत्मविश्वास भी आ गया था। पर मां की नजर से देखने पर कस्तूरबा को लगता था उसमें बेचैनी पूर्ववत थी। कस्तूर को उसकी इस प्रवृत्ति से चिन्ता होने लगती थी। उसे पहले लगता था जैसे-जैसे उम्र बढ़ेगी उसकी बेचैनी घटेगी पर वैसा नहीं हुआ था।

कस्तूरबा को साथ रहते हुए भी भविष्य की चिन्ता थी, पता नहीं कभी फिर बहू-बेटे को देख पायेगी या नहीं। कस्तूरबा के बार-बार आग्रह के बाद बापू ने अंततः कुछ माह पहले ही बेटे-बहू को, विलंबित, आशीर्वाद दिया था। उसी के बाद उनके वहां आने का द्वार खुला था। मोहनदास ने स्वीकार किया था कि वे विवाह से असंतुष्ट नहीं थे। वे वोरा परिवार का सम्मान करते थे। गुलाब उनकी पसंदीदा पुत्र-वधू है, वह जब बच्ची थी और वे कभी उसके पिता से मिलने जाते थे तो वह उनकी गोद में बैठकर पटर-पटर बतियाती थी। उनकी आपत्ति इसी बात पर थी कि दोनों की उम्र विवाह योग्य नहीं थी। यह उनका अपना अनुभव था।

गुलाब दक्षिण अफ्रीका आते हुए घबरा रही थी, बल्कि डरी हुई थी। वह अपनी सासू मां पर पहला प्रभाव सकारात्मक डालना चाहती थी। जैसा उसने सुना था कि सास वर्जित फल की तरह होते हुए अनिवार्य है। गुलाब अपने घर और स्वजनों से हजारों मील दूर थी। कभी-कभी अकेलापन सालता था। लेकिन जल्दी ही उसकी समझ में आ गया था कि उसकी सास नर्मदिल और ध्यान रखने वाली है। वैसी नहीं जैसा सास के बारे में सुना था। कस्तूरबा ने गुलाब को बेटी की तरह प्यार करना आरंभ कर दिया था। वह आकर्षक थी और उसका बेटा उसे उतना ही प्यार करता था जितनी वह सुंदर थी। स्वभावतः कस्तूरबा भी उतना ही मानती थी। घर में बेटी की कमी महसूस होती थी। गुलाब सुंदर होने के साथ कुशाग्र, और जिज्ञासु षोडशी थी। हर समय वह भी कस्तूरबा की खुशी देखती थी। यही कारण था कि उसे कस्तूरबा ने बेटी की तरह अपने संरक्षण में ले लिया था। गुलाब को महसूस होने लगा था कि ससुराल में उसका स्वागत है। कस्तूरबा के मन का जो हरि के बिना खाली कोना था वह बेटे-बहू ने भर दिया था। न अब वह उतनी अकेली रही थी और न बच्चों से दूर।

1 जुलाई, 1907 से परमिट कार्यालय द्वारा एशिया के लोगों के उंगलियों के निशान लेने की तैयारी आरंभ हो गयी थी। ट्रांसवाल के प्रमुख शहरों में पंजीकरण कार्यालय खुल गये थे। वहां लोगों को पंजीकरण के लिए आवेदन देना था। गांधी के नये और विचित्र हथियार 'सत्याग्रह' के परीक्षण का समय आ गया था। उनके स्वयं सेवक भी तत्पर थे। प्रतिदिन आंदोलन के कार्यालय से, जो गांधी भाई के ही दफ्तर में था, वे स्वयं और उनके सहयोगी देश-भर के कार्यकर्ताओं को निर्देश दे रहे थे कि इस बात की सावधानी बरती जाए कि किसी भी तरह की उत्तेजना और हिंसा न हो। पंजीकरण

कानून का शांति, निर्भयता और संयम के साथ विरोध किया जाए। सब सत्याग्रही उनके द्वारा ली गयी शपथ मन ही मन दोहराते रहें। हमारा यह विरोध वास्तव में विरोध न होकर अपने आत्मसम्मान और सबके कल्याण के लिए आत्मोत्पीड़न से गुजरना है।

सत्याग्रह के प्रशिक्षण के लिए और अधिनियम के विरोध में लगातार सार्वजनिक बैठकें जगह-जगह हो रही थीं। हर दिन सत्याग्रही बिल्ले लगाकर परमिट कार्यालयों वाली सड़कों के किनारे धरना दे रहे थे। सरकार का न कानून वापिस लेने का इरादा था और न सत्याग्रहियों को पकड़ने का। पूरे महीने इसी तरह चूहा-बिल्ली का खेल चलता रहा। 31 जुलाई को प्रिटोरिया की बड़ी मस्जिद में जनसभा आयोजित की गयी, जिसमें लगभग दो हजार अ-पंजीकृत भारतीय एक दूसरे को उत्साहित करने के लिए पालथी लगाकर जमीन में बैठे और वक्ताओं को सुना। यह समझा जा रहा था कि मध्य रात्रि तक सत्याग्रहियों और अन्य भारतीयों को गिरफ्तार कर लिया जायेगा। जेलों में जगह का भी सवाल था। सत्याग्रह चालू रहा। अंग्रेज प्रधानमंत्री जनरल बोथा और आंतरिक एवं भारतीय मामलों के मंत्री जनरल स्मट्स इस इंतजार में थे कि आर्थिक रूप से टूटे भारतीयों की कब गर्मी निकले। उन्होंने पंजीकरण की अंतिम तारीख भी बढ़ा दी। सत्याग्रही इस बात से बहुत खुश हुए। और जोरदारी के साथ पोस्टर लगने लगे, पंजीकरण केन्द्रों पर धरनों में भी अधिक लोग जुटने लगे। कुछ भारतीय पंजीकरण कराने भी पहुंचे। गांधी भाई के निर्देश आये कि जो पंजीकरण कराने जायें उन्हें न रोका जाए। इस बीच 511 लोगों का पंजीकरण हो गया। बोथा और स्मट्स ने तय किया सख्ती करने का यही समय है।

28 दिसंबर को मोहनदास के. गांधी और धरना प्रदर्शन में लगे उनके छब्बीस साथियों को जोहान्सबर्ग के मजिस्ट्रेट की अदालत से, हाजिर होने के लिए, समन मिला। यह भी कहा गया कि अगर पन्द्रह दिन के अंदर पंजीकरण नहीं कराया गया तो सजा के हकदार होंगे। किसी ने भी हुक्म की तालीम नहीं की। दो हफ्ते के बाद 10 जनवरी, 1908 को, गांधी के नेतृत्व में सब अदालत में हाजिर हो गये। अदालत में तिल रखने की जगह नहीं थी। बार तक के सदस्य जमा थे। वे सब मुजरिम के कटघरे में खड़े थे। अदालत ने मोहनदास को सबकी तरफ से बोलने का समय दिया। मोहनदास ने सिर्फ एक वाक्य कहा, 'हम सबको सख्त से सख्त सजा दी जाए।'

मजिस्ट्रेट इस असाधारण और अनापेक्षित निवेदन सुनकर चकित रह गया। संभलने में उसे कुछ समय लगा। उसने सबको दो महीने की सामान्य सजा सुना दी।

जब भीड़ बाहर निकली तो लोग कह रहे थे, 'गांधी किस मिट्टी का बना है।'

किसी ने कहा, 'अदालत से क्षमा मांगो या अपनी बात कहो, यह सब न करके, सबके लिए सजा मांग रहा है।'

'कुली जो ठहरा।'

एक सत्याग्रही ने भी सुना, वह हंस दिया।

10 जनवरी, 1908 को ही फीनिक्स में एक आयोजन था। अपराह्न का समय था। गुलाब के गर्भादान का सातवां महीना मनाया जा रहा था। हिन्दुओं में सतवांसा संस्कार आने वाले शिशु की कुशल-क्षेम के लिए मनाया जाता है। कस्तूरबा के जीवन का यह अधिक सुखदायी क्षण था जब वह अपने पुत्र की संभावित संतान का उत्सव मना रही थी। कस्तूरबा को मन ही मन पति की याद आ रही थी। काश! वे भी होते। हालांकि यह आयोजन महिलाओं का ही होता है। वहां सब आत्मीय ही थे। कस्तूरबा सबके पास जा रही थी। छगन लाल की पत्नी काशीबेन भी थी जो बंबई में उसके साथ रह चुकी थी। निकट संबंधी मगनलाल की पत्नी संतोकबेन भी थी, उनके अलावा सेटिलमेंट में रह रही अन्य महिलाएं थीं। गाना-बजाना हो रहा था। सब महिलाएं आनंद ले रही थीं। सब गुलाब के लिए उपहार लेकर आयी थीं। कस्तूरबा अपनी खुशी पर स्वयं चकित थी। पहली बार यह अवसर आया था। पौत्र संतान के आने की आहट घर-भर में व्याप्त थी। बच्चे भी प्रसन्न थे।

कस्तूर ने सभी मेहमानों को खाना परसा था। सब खाना शुरू करने वाले थे। तभी एक नौजवान रेलवे स्टेशन से तार लेकर आया। तार का आना उस जमाने में खतरे की घंटी की तरह समझा जाता था। तार जोहान्सबर्ग से आया था। कस्तूरबा, चूंकि, पढ़ना नहीं जानती थी, तार पढ़कर सुनाया गया। उसमें लिखा था, पंजीकरण न करने के जुर्म में मोहनदास व साथियों को दो महीने का कारावास। सबके सामने न पढ़ा गया होता तो कस्तूरबा चुप रह गयी होती। सुनकर सन्नाटा छा गया। यहां आकर सारे करम तो हो चुके थे इसी की कमी थी वह भी हो गया। मोहनदास को कारावास की यह पहली सजा थी। पहली बार कारावास का नाम सुनना, दूर बैठे घर वालों के लिए कितना भयावह होता है, यह वही जानता है जिस पर गुजरता है।

कस्तूरबा की दुनिया उलट-पुलट हो गयी थी। सारी बातें दिमाग में घूम गयीं। पहली बार डरबन की धरती पर पांव रखते ही उसने यहां के लोगों की आंखों में मोहनदास के प्रति जो नफरत और हिंसा देखी थी, उसी दिन से वह अपने पति की सुरक्षा के प्रति चिन्तित रहती थी। वह अपनी पति की भांति ही विश्वास करने लगी थी जो सच्चाई के साथ जनहित के लिए काम करता है, उसका कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। हालांकि उसने सुन रखा था कि इस देश में कैदियों को काल-कोठरी में डाल दिया जाता है। पहनने के लिए मोटे, दूसरे कैदियों के उतरे हुए बेधुले कपड़े दिये जाते हैं। खाने में उबले, आलू, अधपके चावल, बिना नमक का बेस्वाद मक्का का दलिया दिया जाता है। कस्तूरबा की नजर सामने रखे सुस्वादु खाने पर गयी, उसने गर्दन फेर ली। एक ही सवाल उमड़-घुमड़ रहा था इस अनजान देश में वह क्या कर पायेगी?...*क्रमशः अगले अंक में*

गतिविधियां एवं समाचार

सर्वोदय विचार परीक्षाओं में गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र का परिणाम :

राजस्थान राज्य गांधी स्मारक निधि, जयपुर के परीक्षा संयोजक नानकराम गुप्ता के अनुसार गांधी शांति प्रतिष्ठान केन्द्र, जोधपुर में सर्वोदय विचार परिचय परीक्षा एवं प्रवेश परीक्षा का परिणाम जारी कर दिया गया है। प्रवेश परीक्षा में 75.72% एवं परिचय परीक्षा में 59.80% रिजल्ट रहा। केन्द्र द्वारा 40 शिक्षण संस्थाओं में परीक्षाएं ली गयीं। सदैव की भांति इस केन्द्र का परीक्षा परिणाम संतोषजनक रहा।

राजस्थान स्तर पर वरीयतानुसार परिचय परीक्षा में गांधी भवन के विद्यार्थी निरूपमा हजारिका का चतुर्थ, सरस्वती बाल वीणा भारती सी. सै. विद्यालय सूरसागर के राजू सिंह का पंचम स्थान रहा। प्रवेश परीक्षा में महालक्ष्मी बा.सी.उ.मा.वि. प्रतापनगर के पायल पंडित एवं श्री कुम्हार छात्रावास सरदारपुरा के रूपाराम का चतुर्थ स्थान रहा। उपाध्यक्ष श्रीमती आशा बोथरा, सचिव भावेन्द्र शरद जैन एवं कार्यकारणी के सदस्यों ने हार्दिक बधाई दी।

जोधपुर केन्द्र के परीक्षा प्रभारी धर्मेश रूटिया ने बताया कि गांधी भवन सहित फूलचंद उ.मा. विद्यालय सिंहपोल, नामदेव उ.मा.वि. सूथला, बाल निकेतन राईकाबाग, उम्मेद कन्या उ.मा. विद्यालय सोजतीगेट, श्री बी.आर. अम्बेडकर आवासीय उ.मा. विद्यालय, राजकीय उ.मा.वि. सरदारपुरा, राजकीय उ.मा.वि. राजमहल, पेरामाउण्ट पब्लिक स्कूल, बावड़ी, रोटरी उ.मा.वि. मसूरिया, श्री राजेन्द्र उ.प्रा.वि. गुलाबसागर, मारवाड़ एकेडमी सी.सै. स्कूल पावटा, श्री कुम्हार छात्रावास, महालक्ष्मी बा.उ.मा.वि. जालोरीगेट, महेश सी.हा.सै. स्कूल सिंवाचीगेट, केन्द्रीय विद्यालय नं.-1 एयर फोर्स, श्री वरुण पब्लिक सी.हा.सै.चौ.हा. बोर्ड, डॉ. पदमचंद बिलमकंवर गांधी रा.मा. वि. रेजीडेंसी रोड, मौलाना आजाद मुस्लिम बी.एड. कॉलेज, महर्षि दधिचि महिला महाविद्यालय बासनी, ओंकारमल सोमानी वाणिज्य महाविद्यालय, श्री नाकोड़ा पार्श्वनाथ जैन वाणिज्य महाविद्यालय, श्री व्यास कॉमर्स कॉलेज सरदारपुरा, राजकीय महिला पॉलिटेकनिक कॉलेज, उम्मेद स्कूल गुलाबसागर, श्री छगनराज चौपासनी वाले रा.बा.सी. स्कूल, जालोरीगेट, पावटा आदर्श विद्या मंदिर, बी.डी.आर.के.ए. हनुवंत स्कूल, अग्रवाल जमनादेवी बा.सी.सै. स्कूल, अनुवंत स्कूल पाल रोड, प्रेमकिशोर अग्रवाल मिडिल पब्लिक स्कूल, पाल रोड, नवीन शिशु निकेतन बा.उ.मा.वि. मसूरिया एवं श्री सरस्वती बाल वीणा भारतीय सी. सै. स्कूल, सिरोलाबेरा, सूरसाग, रा.उ.मा. विद्यालय भटियानाड़ी, राजकीय उ.मा.वि. गांधी सागर, राजकीय उ.मा.वि. भोजासर, राजकीय उ.मा. वि. भींयासर एवं राजकीय आदर्श उ.मा. वि. आऊ इन परीक्षा केन्द्रों के विद्यार्थियों को वरीयता अनुसार ग्रीष्मावकाश के बाद स्थानीय स्तर पर दीक्षांत समारोह आयोजित कर प्रमाण-पत्र, नकद पुरस्कार एवं प्रोत्साहन स्वरूप सद्-साहित्य प्रदान किया जायेगा।

–डॉ. भावेन्द्र शरद जैन

गांधी-150 शिविर का आयोजन

गांधी - 150 के उपलक्ष्य में गांधी शांति मंच द्वारा 18 अप्रैल, 2018 को एक संगोष्ठी का आयोजन कोलकाता स्थित भारत की आजादी आंदोलन के पिंड-स्थान इंडियन एसोसिएशन सभागृह में सम्पन्न हुआ। संगोष्ठी का मुख्य विषय था *'वर्तमान में युवाओं के सामने गांधी की प्रासंगिकता'*। विषय प्रवेश तथा संगोष्ठी की अध्यक्षता सर्व सेवा संघ के मंत्री चंदन पाल ने की। प्रमुख वक्ता के रूप में उपस्थित थे हरिजन सेवक संघ के अध्यक्ष, अध्यापक शंकर सान्याल, प्राध्यापक निर्मलेक्षु भट्टाचार्य, श्री प्रशांत सामन्त। वक्ताओं ने अपने-अपने वक्तव्य रखे। गांधी शांति मंच के श्री तापस मान्ना ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

आने वाले दिनों में ऐसी संगोष्ठी एवं शिविरों का आयोजन गांव में तथा अलग-अलग जिलों में करने का निर्णय हुआ।

चंदन पाल के भाषण के बाद हुगली जिले के सिंगुर से आये मोसारप हुसेन ने अपने गांव में तीन दिन का एक युवा शिविर स्वयं की व्यवस्था एवं खर्च पर करने की घोषणा की। **–स.ज. प्रतिनिधि**

गांधी शांति प्रतिष्ठान समिति की बैठक सम्पन्न

गांधी शांति प्रतिष्ठान समिति, जोधपुर की साधारण सभा के सदस्यों की आवश्यक बैठक गांधी भवन में आयोजित की गयी।

निर्वाचन अधिकारी प्रो. डी. डी. शाह ने बताया कि बैठक में सर्वसम्मति से वर्ष 2018-2020 (तीन वर्ष) तक के लिए श्रीमती आशा बोथरा को अध्यक्ष, डॉ. भवेन्द्र शरद जैन को सचिव, डॉ. ओमप्रकाश टाक को उपाध्यक्ष, राकेश गांधी को कोषाध्यक्ष, धर्मेश रूटिया को संयुक्त सचिव चुना गया। कार्यकारिणी सदस्य के रूप में डॉ. पद्मजा शर्मा, गीता भट्टाचार्या, शहरकाजी मोहम्मद तैय्यब अंसारी एवं बादलराज सिंघवी सर्वसम्मति से घोषित किये गये। इस अवसर पर प्रो. शाह ने कहा कि नयी कार्यकारिणी को और अधिक ऊर्जा के साथ गांधी विचार एवं प्रसार का कार्य करना चाहिए।

नवनिर्वाचित अध्यक्ष आशा बोथरा ने कहा कि गांधी विचारों का सैलाब लाने हेतु बापू की प्रासंगिकता के साथ कार्यकर्ताओं की प्रासंगिकता अधिक बढ़ गयी है। न्या. चंद्रशेखर धर्माधिकारी के संदर्भ का उदाहरण देते हुए उन्होंने कहा कि वर्तमान समय चुनौतियों से भरा है। अतः 6 माह बा और 6 माह बापू के लिए कार्यक्रमों की रूपरेखा 'बा-बापू 150'वीं जयंती हेतु कार्यक्रमों की तैयारी करें। प्रत्येक सदस्य एक-एक कार्यक्रम की जिम्मेदारी उठा कर सशक्तता प्रदान करें। **–दाऊ दास शाह**

रश्मि शर्मा की कविताएं



चीड़

चीड़
तुम खड़े हो
उर्ध्वमुखी, गगनचुंबी
पहाड़ों को नापते
काले-सफेद मेघों के गले मिलते

झड़ती, नुकीली
हरी-पीली पत्तियों का
बिछौना है लगा
जो संभले, नाप ले दूरी
नहीं तो
अतल गहराईयों में
शूलों की सेज भी है तैयार

चीड़ सुना है मैंने
तुम्हारे जंगलों को बोलते
पत्तियों से उलझ कर
निकलती है सर्र-सर्र हवा
तो कभी
हा हा करता व्यथित मन सा
अंतस को छेदता हाहाकार

शाम का पीलापन
अटका है शाखों पर
दरख्त की घनेरी छांव
चीड़ की कोन पर अब
उतर आयेंगे सितारे झिलमिलाएंगे
चन्द्रमा की रौशनी में
खो जायेगा तुम्हारा मेरा अस्तित्व

चीड़
तुम्हारी
सूखी-झरी पत्तियों के बीच
उग आयी है हरी घास
रोप आयी हूं खुद को वहीं
एक चट्टान की ओट में
पहाड़ तब बुलाएगा मुझको
जब किसी चीड़ की दरख्त से लिपट
मैं होने लगूंगी उर्ध्वगामी

गुजरे मौसम की महक

फिर एक बार
मौसम बदलने को है
गए मौसम में
एक कसक बंद हुई थी
दिल के कोकून में
रेशमी अहसास के साथ
एक दर्द
करवटें लेता रहा लगातार
सलवटें चुभती रहीं
गुजरे मौसम की महक
बेसाख्ता
खींच ले गयी
अपने माज़ी की तरफ
नहीं झड़ते अब
मेरे बगीचे में फूल शेफाली के
रात-रात भर
दूबों की नोक पर
बुंदकियां सिमटी मिलती हैं
हर सुबह
ओस नहीं है वो, आंख से झरे
मोती हैं
जो हरे धागे की मखमली चादर पर
बिखरे रहते हैं, हर सुबह
दश्ते-गुरबत में
फिर चांदनी का बसेरा होगा
फूल महकते होंगे
रजनी गंधा की फलियां
चटखती होंगी
हरिसिंगार झरता होगा
माज़ी-ओ-हाल जिसे सौंपा
उसके दिल का मौसम
नामालूम अब कैसा होगा

मैंगरोव

धुआं-धुआं सा समां
समंदर में है रेत
या रेत का है समंदर
कैसे उगते हो तुम
'मैंगरोव'
पानी से दूर, पानी के पास

चांदनी रात में
समुद्र से निकलती है नहीं
सींचती है तुम्हें
लौट जाती है फिर
विशाल सागर में

ओ महासागर
नीली लहरों के ऊपर
है काले बादल
क्या इसलिए तुम
'कालापानी' कहलाए
'मैंगरोव', तुममें है शक्ति
पुनर्जीवन की,
मेरी जड़ें भी उखड़ी सी हैं
मुझे रोप दो
इसी समंदर वाली
नदी के तट पर

कभी एक दिन
कोई आएगा
पांवों के निशान तलाशते
इस सुंदर द्वीप-समूह में
अभी उम्मीदों सा
हरा समंदर लेकर...

सर्व सेवा संघ (स्वत्वाधिकारी) के लिए महामंत्री, शेख हुसैन द्वारा सर्व सेवा संघ परिसर, राजघाट, वाराणसी (उ.प्र.) 221001 से प्रकाशित तथा प्रिन्टेक, इंडियन प्रेस कॉलोनी, मलदहिया, वाराणसी से मुद्रित। संपादक : अशोक मोती।